Chap-6

षष्ठ अध्याय

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रतिबिम्बित राजनीतिक जीवन

मानव-समाज के आदिम-युग में सुव्यवस्थित शासन-प्रणाली का अभाव था किन्तु मानव सभ्यता जैसे-जैसे विकसित होती गई मानव जनसमूह ने अपनी सुरक्षा और संरक्षण के लिए किसी बलवान और बुद्धिमान व्यक्ति को उत्तरदायी बनाने का उपाय खोज निकाला और संभवतः यहीं से 'राजा' अर्थात् जो राज्य का शासन करे, की अर्थाभिव्यक्ति करने वाले शब्द का प्रादुर्भाव हुआ होगा। आज से लगभग 5000 वर्ष पहले भारतवर्ष में शासन-पद्धति का अच्छा विकास हो चुका था, उस समय में मोहनजोदड़ो नगर का प्रबंध कोई संस्था या समिति करती थी, विद्वानों का अनुमान है कि मोहनजोदड़ो में कोई राजा नहीं था।[1] किन्तु धीरे-धीरे एक ऐसी प्रणाली विकसित हुई जिसमें कुछ कर्मचारी, परामर्शदाता आदि के सहयोग से एक सम्पन्न व्यक्ति किसी जनपद के हितों का ध्यान रखते हुए पुरी व्यवस्था का जिम्मेदार मान लिया गया।

---

1. भारतीय संस्कृति का उत्थान - डॉ. रामजी उपाध्याय, पृ. 228,29

राजनीति का सीधा सम्बन्ध राज्य और राज्य संचालन से है, और इस राज्य संचालन के काम का सीधा सम्बन्ध राजा और उनके सहयोगी दल से है। अतः राजनीति की चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना अनिवार्य है कि राज्य क्या होता है, तथा उसके कितने और कौन-कौन से अंग हैं। नीति की दृष्टि से राज्य एक ऐसा सीमित प्रदेश होता है, जिसमें रहने वाले उसके शासक को स्वीकृत करते हैं और राज्य-संचालन के लिए उसे कर देते हैं। बदले में शासक व्यवस्था, सुरक्षा एवं प्रजा की आजीविका का प्रबंध करता है। अभिप्राय यह कि प्रदेश (भौगोलिक सीमाओं में) शासक, प्रजा और व्यवस्था - ये चारों मिलकर 'राज्य' का निर्माण करती हैं।

राज्य के अंगों की चर्चा करते हुए स्मृतिकारों ने राज्य के सात अंग स्वीकार किए हैं। इन सातों इकाइयों का सामूहिक नाम राज्य है। ये इस प्रकार हैं - 1. स्वामी (राजा, शासक), 2. अमात्य (मंत्रिमंडल आदि), 3. राष्ट्र (राज्य विस्तार एवं प्रजा। इसे जनपद भी कहा गया है।) 4. दुर्ग (सुरक्षा-प्रबंध, पुर तथा राजधानी) 5. कोष (धन, सम्पत्ति आदि, जिसकी आवश्यकता व्यवस्था में पड़ती है।) 6. सेना (इसे दण्ड, बल आदि भी कहा जाता है।) 7. मित्र (अन्य राज्यों से सहयोगी सम्बन्ध) ये सातों अंग परस्पर सहयोगी हैं।

"स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रः कोषदण्डौ सुहृतथा।
सप्तप्रकृतयो होताः सप्तांग राज्यमुच्यते ।"[1]

निस्सन्देह महत्व की दृष्टि से प्रत्येक अंग की निजी सत्ता है, फिर भी जैसे शरीर के विभिन्न अंग शरीर के लिए लगभग समान महत्व के होते हैं, वैसे ही ये सातों अंग भी एक-दूसरे के पूरक हैं। कामन्दक (4/1-2) ने लिखा है कि सातों अंग एक-दूसरे के पूरक हैं , यदि एक भी अंग दोषपूर्ण हुआ तो राज्य ठीक से चल नहीं सकता।[2]

हमारे आलोच्यकाल-मध्यकाल तक आते-आते भारत देश की राजनीतिक स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई थी। विदेशी आक्रमणकारियों के बार-बार देश पर आक्रमण करने, कुछ के यहीं पर बस जाने और विभिन्न संस्कृतियों के समागम से सम्पूर्ण राष्ट्र में एक संक्रांति, द्विविधा और किंकर्तव्य विमूढ़ता की-सी स्थिति उपस्थित हो गई थी और गुजरात भी इन परिस्थितियों से अछूता नहीं था। इसी परिस्थिति की स्पष्ट झलक हमें गुजरात के मध्यकालीन साहित्य में देखने को मिलती है , जिसे हमारे मध्यकालीन कवियों ने अत्यंत स्पष्ट रुप से अपने साहित्य में अंकित किया है।

---

1. मनुस्मृति - संपा. डॉ. गोपालशास्त्री नेने, 9/294
2. धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग- 2)- पी.वी. काणे द्वारा पृ. 586 पर उद्धृत

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं में राजनीतिक स्थिति से सम्बन्धित निर्देश अत्यधिक प्रमाण में मिलते हैं। विवेचन सुविधा की दृष्टि से उन्हें इस प्रकार बाँटा गया है।

(अ) राजा और प्रजा का सम्बन्ध

(आ) शासन-संचालन में सहायक मंत्री और अन्य अधिकारी गण

(इ) सैन्य-व्यवस्था

(ई) अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिकों के अंग-त्राण

(उ) युद्ध-पद्धति

(अ) राजा और प्रजा का सम्बन्ध

आलोच्यकाल के अधिकांश शासकों का प्रजा के प्रति, पिता के समान हितकर दृष्टिकोण था। वे उसके सुख-दुःखों से पूर्णतः परिचित थे, और प्रजा के जान-माल की रक्षा करना अपना परम कर्तव्य, धर्म समझते थे। अधिकांश राजाओं के प्रति प्रजा का भाव ईश्वर , सेवक के भाव की तरह था तथा उनके मुख-दर्शन और नाम स्मरण को पुण्यकर समझते थे। गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन राजा, राज्य तथा राजनीति सम्बन्धी विचारों एवम् अपनी मान्यताओं को सम्यक् रुप से अभिव्यक्ति दी है।

प्रजाजन राजा के राज्य के अभिन्न अंग होते हैं और इसीलिए प्रजा की सुख-सुविधा एवम् सुख-शांति से राजा की राजकीय संचालन की दक्षता और कार्यकुशलता का अनुमान किया जा सकता है कि वह उसमें कितना सफल हुआ है। प्रजा की सुख-सम्पन्नता राजा की श्रेष्ठता एवम् सफलता को घोषित करती है, तो अशांति और अराजकता असफलता को दिखलाती है।

दादू के अनुसार वही नगर श्रेष्ठ है, जिसका एक ही मुख्य शासक है, उस राजा के राज्य में सुख व शान्ति होती है।

दादू नगरी चेन तब, जब इक राजी होई।
दो राजी दुख द्वन्द्व में, सुखी नहीं बसे कोइ ॥
इक राजी आनन्द है, नबारी निश्चल त्रास।
राजा परजा सुखि बसै, दादू ज्योति प्रकास।[1]

तत्कालीन राजा अपनी प्रजा की सुख-सुरक्षा के लिए और शांत वातावरण प्रदान करने हेतु किस प्रकार से आयोजन करते थे, इसका प्रमाण महाराव लखपतिसिंह ने जनसाधारण की सुचना के लिए जो घोषणा ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवाकर भुजनगर के मध्यमार्ग पर लगवाई थी, इससे चलता है। जिसके

1. दादू दयाल ग्रंथावली -संपा.परशुराम चतुर्वेदी, माया कौ अंग - 12/31,32

कुछ महत्वपूर्ण अंश द्रष्टव्य हैं - "लखपतिसिंह ने अपने पिता देसलजी के शासनकाल की प्रजा की शिकायतों को दूर करते हुए अब कोई किसी को सतायेगा नहीं, लेन-देन के झगड़े लिखित आधार पर तय कर दिये जायेंगे। गंभीर आरोप के लिए दो प्रतिनिधि व्यापारियों के तथा दो महाराजा द्वारा नियुक्त व्यक्ति, इस प्रकार चार व्यक्तियों की यह समिति के अनुसार महाराजा कार्य करेंगे। संकट समय में राजा की तरफ से प्रजा से लिया गया ऋण चार व्यक्तियों की समिति के अनुसार कार्य कर ऋण की राशि राज्य की कर राशि में से चुका दिया जायेगा। X X X [1] इस तथ्य से राजा की प्रजा के प्रति कर्तव्यनिष्ठा और स्वच्छ वहीवट की पारदर्शिता का ही पता चलता है।

जनता को बराबर रोजी कमाने और आमदनी बढ़ाने का अवसर मिले, इस हेतु 'आयना महल' के निर्माण की योजना भी चलायी गयी।[2]

मुकुर के भोंन मांहि होति प्रति निति यौ

एक एक धनी भांति व्यापि रही यथागति।[3]

तत्कालीन राजा विद्धानों, गुणियों, कवियों एवम् कलाकारों को आश्रय देते थे। साथ ही शिक्षा के प्रसार हेतु पाठशाला की स्थापना भी करते थे जिसको चलाने की व्यवस्था राजकीय आय में से होती थी -

हुन् दिया गाँव उदार भुजपति, श्रीलसा महाराज।

रेहा सनेहा सुध दिल दिय कियौ धर्म जु काज। [4]

इसके साथ-साथ इन राजाओं ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखने में भी पर्याप्त योगदान दिया है। इन राजाओं ने ब्राह्मणों को संरक्षण दिया, जिसके परिणामस्वरुप दैवमंदिर, धर्मशालाओं और पाठशालाओं का अस्तित्व बना रहा।[5] / 35/4,5,6

इस प्रकार के मंदिर निर्माण के साथ-साथ उसके महोत्सव समारंभ में राज्य की ओर से नगर के सभी निवासियों के खाने-पीने की व्यवस्था भी की जाती थी।[6]

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - पृ. xxiii
2. बोम्बे गजेटियर - (भाग-5) - पृ. 216
3. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - प्रथम तरंग-5,
4. वही - पृ. xxv
5. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 35/4,5,6
6. वही - लहर - 27/9

राजा प्रजा का संपूर्ण ख्याल रखता था, महेरामसिंह ने सं. 1847 वि. में अकाल के समय प्रजा की पुरी सहायता की थी।[1]

राजा को इसी हेत के कारण प्रजा भी जब राजा पर या उनके परिवारजनों पर कोई आपत्ति आती है तो उदास प्रतीत होती थे और सब प्रकार के वैभव तजकर राजा के दुःख में सहभागी होते थे।[2]

राजा की प्रजावत्सलता और प्रजा के कार्यों के प्रति सचेतना जिस तरह हमें देखने को मिलती है, उसी तरह 'राजा कालस्य कारणम्' उक्ति को चरितार्थ हुआ भी देख सकते हैं। जहाँ एक ओर राजा अपने श्रेष्ठ गुणों से अपने राज्य का विकास कर सुख-शांति की स्थापना करता है, वहीं अधर्मी राजा, प्रजाकीय कार्यों से अलिप्त रहते हुए अनीति के मार्ग का अनुकरण करके राज्य को अधःपतन के कगार पर ला खड़ा कर देता है। उसे प्रजा के कार्यों से कोई लेना-देना नहीं होता। वह अपने वैभव-विलास के लिए प्रजा पर अत्याचार भी गुजारता है। इस प्रकार के कई उल्लेख गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों के काव्य मे दृष्टिगत हुए हैं, जो तत्कालीन ऐतिहासिक संदर्भ से भी मेल खाते हैं।

अखा के एक भजन में राजा के इसी अभिमानी स्वभाव का वर्णन है, जो हठीले एवम् दंभी होते थे-

राजपुत्र स्वभावे ऐसा, कोई को शीष न नामें,
जाचक जगत प्रणामे, प्रशंसे - कबहूं राज्य न पामे।[3]

ऐसे अभिमानी और दंभी राजा के प्रजा के साथ किए गये अन्याय की बात भी यहाँ बताई गई है। जहाँ पूरे नगर में लोगों को शांति नहीं है, क्योंकि वहाँ का शासनतंत्र बेढंगे व्यक्ति के पास है।

इस नगरी में ना सुखे सोणा-
नित भांगे। और नित होय रोणा।
जिस नगरी का राजा नढंगा-
सर्वे लोक चले आप रंगा।[4]

सन्त अखा की बात का समर्थन कवि दयाराम ने भी किया है। उन्होंने अपने काल के अत्याचारी और कुकमी राजाओं को देखा था, जहाँ सज्जनों को सजा और दुर्जनों की पूजा होती थी। साधु को असाधु और ईमानदार को चोर का इकबाल दिया जाता था। ज्ञानीजन एवम् दीन दुखियों को कष्ट का सामना करना पड़ता था। इस प्रकार के अंधेरमय शासन का चलम था, क्योंकि जिस राज्य का राजा ही अधर्मी हो वहाँ उसे पूछने वाला कौन?

---

1. महेरामनसिंह कृत प्रवीणसागर का आलोचनात्मक अध्ययन- डॉ.मोहब्बतसिंह चौहान - पृ. 50 (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
2. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 27/10 पृ. 311
3. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह,भजन-23
4. वही - भजन-6

राजा अधर्मी, कलि प्रबल, न चलि धर्म को जोर,
साधु असाधु कों कहयो, शाह ठरावे चोर,
शाह ठरावे चोर, भ्रष्ट पाखंडि पुजावे,
सज्जन गुनि हरि भक्त, रंक को दुष्ट दबावे[1]

अखा की उक्ति में इसी प्रकार का वर्णन आया है, कि राज दरबार में भी चापलूस, हाँजी हाँजी करने वाले लोग होते थे, जो झूठ को सच करते और सत्य को मिथ्या कहते थे-

राजस बहु जूठुं बके ताहां जी! जी! कहेता जाय।
झूठा ने साचो कहे अने साचुं करे मिथ्याय ।[2]

अन्याय के सामने नतमस्तक लोग हो जाया करते थे, किन्तु सच्ची बात करने का साहस कोई नहीं करता था -

असन बसन के कारणे सेवे राजरुद्वार।
रोचक बोध बोधे अखा ताको काहा इतबार ।।[3]

राजा प्रजा हित के कार्य से अलिप्त हो गये थे, उनमें अहंकार व्याप्त हो गया था। अखा ने अपनी साखी में इसका वर्णन किया है। उनके शिष्य लालदास साहब ने राजा को अपने मन को संयम में रखते हुए काम, क्रोध और अहंकार से दूर रहने को कहा है। मूंछ को ताव देना ही जैसे राजा का काम रह गया था, जो अहंकार को ही प्रदर्शित करता है -

कोईनुं लेइने कोइने आप तो दिसे काल।
त्यां मरोड़े मूठने अमो छुं भूपाल ।। [4]

X X X X

काया नगरी मांय, मन मेवासी राजा।
काम, क्रोध, अहंकार, बड़े हे हरामजादा ।।[5]

प्रजा के धन का व्यय भी राजा स्वयं के वैभवशाली विलासी जीवन जीने में खर्च करते थे। प्रजा के कार्यों और उनके दुःख दर्द से ज्यादा उन्हें मनवांछित विलास में रत रहना अच्छा लगता है।[6]

---

1. दयाराम काव्य सुधा - संपा. प्राणशंकर व्यास, पृ. 169
2. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह - आसा को अंग-53/6
3. वही - वीटंड अंग-31/11
4. वही - आसा को अंग-53/3
5. गुजरात के हिन्दी सन्तों की वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ. 163
6. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री, लहर-8/9,11

   यातें कुंवर न काज कछु, मानवत सुख विलसंत,
   कुल वय सम रजपूत कवि, आवृत रहत अनंत।

   सतरंजादिकखेल, ... रस रंग राग नित नित नये,

अखा ने भी इसी प्रकार का उललेख किया है-

सुझन बुझन गुझ गोविन्द की लुंझ परे लोका देखी अडंबर;
ओछो सो अंग उर तान तरंग शोभा सुगंध रंग पाट पटंबर।
तन सुख मन सुख लालच्य के लीये चीत्रवीचीत्र देखी भयो गुंबर;
राम बीना रीत्य मानी अखो केहे जेसे ही भरे कोई अम्बर ।। [1]

वैभवशाली जीवन के साथ-साथ राज्य की आय का अधिकतर भाग सैन्य व्यवस्था को बनाये रखने में ही खर्च कर देते थे। राज्य की आय के छः भाग में से तीन भाग सैन्य और अन्य एक भाग हाथी, घोड़ों पर खर्च करते थे -

निज पैदास निहार, षटह भाग सु तिहि कीजे।
एह भरत भंडार, दान पुनि एक सु दीजे।
तीन सेन प्रति खरच, एककी हद ढढाई।
राज काज पर गाह, बाज गजराज खवाई।[2]

इस प्रकार के वातावरण से जनता को किसी शासक के रहने न रहने का कोई हर्ष-शोक नहीं रहता था। लोग अपने अपने ढंग से चलते थे। कोई किसी को पूछनेवाला नहीं था -

जिस नगरी का राजा नढंगा-
सर्वे लोक चले 'आप' रंगा।[3]

(आ) शासन - संचालन में सहायक मंत्री और अन्य अधिकारी गण :

मध्यकाल में सारे भारत देश में राज शाही व्याप्त थी। किसी भी राज्य का मुखिया राजा हुआ करता था, किन्तु अकेला राजा पुरे राज्य के संचालन का भार वहन नहीं कर सकता, इसलिए उसे समय-समय पर कई लोगों की जरुरत पड़ती है। जो उसे संचालन व्यवस्था में मदद कर सके। प्राचीनकाल से चली आ रही इस प्रकार की व्यवस्था को आज आधुनिक कालमें मंत्रिमंडल नाम दिया गया है। राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए, राज्य का कारभार सुचारु रुप से

1. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह, संत प्रिया -49
2. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 8/7
3. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह, भजन-6

चलाने के लिए राजा योग्य व्यक्तियों को अलग-अलग स्थान पर बिठाते थे, जो दैनिक कार्य से लेकर युद्ध की व्यूहरचना त के कार्य में सतत राजा को सहायता करते थे एवं उसे उचित सलाह मशविरा देते थे।

✲ राजसभा वर्णन : प्रवीणसागर में कई स्थान पर राजसभा का वर्णन मिलता है। एक स्थान पर इस प्रकार का उल्लेख आया है कि राज्य में सामान्यतः सप्ताह में एक बार दोपहर को चार घड़ी दिन रहते राजसभा का आयोजन होता था और यह सभा लगभग आधी रात को पुरी हुआ करती थी। राजसभा में सम्मिलित अधिकारी गणों में प्रमुख रुप से प्रधान, सरदार, पुरोहित, कवि इत्यादि अपने निश्चित स्थान पर बैठा करते थे। सभा के प्रारंभ में शासन व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्नों की चर्चा तथा उसके निराकरण के उपायों पर विचार किया जाता था। इसके पश्चात् बाहर से आनेवाले व्यक्तियों को राजा सुनता था और फिर कविता, पाठ, संगीत और नृत्य इत्यादि रात के दुसरे प्रहर तक होता रहता था। शेष दिनों में राजा अपनी सेना और अस्त्रशस्त्र की कामचलाऊ व्यवस्था और शासनप्रबन्ध से सम्बन्धित अन्य कार्यों के लिए कुछ समय दिया करते थे।[1] दादू के काव्य में ईश्वर के माध्यम से बादशाह के दरबार का परम्परानुसार वर्णन में इस प्रकार के शब्दों को रखा है जिससे अनायास ही तत्कालीन मुगल दरबार का चित्र उभर आता है।

चित्र विचित्र लिखें दरबार, धर्म राई ढाढे गणु सार।....
खलक खजीना भरे भंडार, ता घर बरते सब संसार।
पूरि दिवान सहजि सब देइ, सदा निरंजन अेसो हे।

नटवर नाचे कला अनेक, आपण देषै चरित अलेष ।।
संकल साध वाजै नीसांण, जेजेकार न मेरे आंण।[2]

जबकि 'लखपतिजससिंधु' में कवि कुँअर कुशल ने राजसभा का वर्णन इस प्रकार किया है -

"महाराजा लखपतिसिंहजी की सभा जैसी सभा मैंने कही नहीं देखी। इस जन्म में ना ही ऐसी सभा देखी और ना ही देवलोकों की सभा के बारे में ऐसा सुनने में आया। सभा में एक ओर बड़े बड़े उमराव

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 23/2

रवि घोस राज सदसी रचंत, वासी विदेश तिहि दिन प्रसंत।
उमराओ वृंद आवे अमतृ, नायका नृत्य गायका गात।
छवि छाहगीर नग जड़ित छत्र, चिहूं दिशा पासवान सुविचित्र।
जेष्टी सुधार निज थान थान। दिन चत्र धरी मंडल रचंत, जाम नो जाम अध्र वीश्रजंत।

2. दादू ग्रंथावली - संपा. परशुराम चतुर्वेदी , राग भैरु, पृ.474

बैठे हैं तो दूसरी ओर बड़े बड़े अमीर प्रधान बैठे हुए हैं जो बड़े ही गर्वीले हैं। सभा में बड़े-बड़े पंडित, पुरोहित, फोज़दार, बखसी इत्यादि बिराजमान हैं। ऐसी सभा में राजाओं के राजा महाराजा लखपतिजी बिराजमान है।"[1] अपने आश्रयदाता राजा की प्रशंसा करना आश्रित कवि का मुख्य धर्म होता था। आश्रयदाता के गुणों, कारनामों को कल्पनामय रुप देकर लिखना रीतिकाल की सहज प्रवृत्ति थी। उपर्युक्त वर्णन में कवि कुँअर कुशल ने आश्रयदाता महाराज लखपतिसिंहजी की सभा का अतिशयोक्तिपूर्वक वर्णन किया है।

❊ **उत्तराधिकार** : भारतीय संस्कृति की प्राचीन व्यवस्था अनुसार उत्तराधिकार का अधिकारी राजा का ज्येष्ठ पुत्र होता था, किन्तु प्राचीन काल से ही कई बार इस व्यवस्था का अक्षरसः पालन नहीं होता देखते हैं। गुजरात के मध्यकाल के संदर्भ में भी राज्य में उत्तराधिकार का प्रश्न एक बड़ी समस्या रही है। कहीं कहीं पर हम उसका पालन होता हुआ देखते हैं तो कहीं पर यह नियम तूटता हुआ भी देख सकते हैं।

कच्छ के जाड़ेजा शासकों में बड़े पुत्र को राजगद्दी मिलती थी और अन्य पुत्र भायात कहलाते थे, जिन्हें जागीरें मिली होती थीं।[2]

परे भ्रात बंगार के ज्येष्ठ अलैया जोय।
साहिब राहिब दोउ सम सांचे राउत सोय।। [3]

उत्तराधिकार के विषय में मतभेद न होने की वजह से यह भाई बाँट के सिद्धान्त पर आधारित नीति काफी लम्बे समय तक चलती रही, किन्तु जाड़ेजा वंश में राव रायधन की सन 1698 में मृत्यु हो जाने के उपरान्त उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर संघर्ष हुआ। राव रायधन का तृतीय भाई प्रागमल अपने ज्येष्ठ भाई के पुत्र के उत्तराधिकार के दावे को अस्वीकार करते हुए कुछ अन्य भायातों के साथ मिलकर राजगद्दी पर अधिकार कर कच्छ का राव बन बैठा [4] इसका उल्लेख मिलता है।

मध्यकालीन संत अखा की एक गूढ उक्ति से भी यह बात स्पष्ट होती है कि इस नियम का उल्लंघन होता हुआ हम देख सकते हैं।

---

1. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - प्रथम तरंग -4,5,6
   एक ओर देषीयत बड़े बड़े उमराउ, एक ओर है अमीर बड़े परमान के।
   .... राजनि के राजा महाराज। लखपतिजू के सभा जैसी देषि तैसी काहू नाहि आन के।
   XXXXXX
   दूसरी सभा तो ऐसी देषी नांहि सुनी तैसी।
   सूर की सभा न वैषी साहि की न महामति।।
   XXXXXX
   दूजी सभा नहि या भुव में निरषी न सुनी कहूँ देव की ओसी... ।।
2. वही - पृ. ix
3. वही - प्रथम तरंग- 82
4. कारा डुंगर कच्छजा - अनुवाद - वसंतराय पट्टणी, पृ. 128-29

पाट बेसे सो पाटवी कूल न देखे कोए।

सुरा पुरा कोई हो पद पावे सो सोए।[1]

जबकि गुजरात के गौरवग्रंथ 'प्रवीणसागर' में राजा द्वारा जीते जी अपने पुत्र को राजगद्दी सौंप देने का उल्लेख मिलता है। लाखाजी ने जीवित अवस्था में ही अपने पुत्र महेरामन को राज्य शासन सौंप दिया था। उस समय उनकी आयु 26 साल थी।[2]

* **प्रधान, मंत्री, वजीर** : राजा के सबसे निकट के व्यक्ति के रुप में प्रधान की गणना मध्यकाल में होती रही है, जिसे मुगल सल्तनत में वजीर, दिवान जैसे शब्दों से भी जाना जाता था।

'लखपतिजससिंधु' में आये उल्लेख के अनुसार इस पदपर श्रीमंत व्यक्ति को बिठाया जाता था। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि एक स्थान पर वर्णन आया है कि वहाँ नगर सेठ होते थे, जिन्हें प्रधान पद पर नियुक्त किया जाता था-

जग सेठ सिरोमणी जस जिहाज।

राजे प्रधान पद सुख समाज॥[3]

लखपतिसिंहजी ने भी राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए दीवान-पद पर किसी सम्पन्न घराने के व्यक्ति को नियुक्त करना प्रारंभ किया, जिससे कभी राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ती थी, तो उसका उत्तरदायित्व दीवान पर आता था और उसे पद-मुक्त कर दिया जाता था। उसकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली जाती थी।[4] मुगल बादशाहों की ओर से जब सूबेदार को प्रांत का राजतंत्र संभालने के लिए भेजा जाता था तब बादशाह का मुख्य दिवान सूबेदार को कुछ निर्देश देता था, जिनमें से एक निर्देश यह भी था कि, "सूबेदार का दिवान अच्छे चाल चलन का और अनुभवी हो, साथ में वह अमीर घराने से सम्बन्धित हो ऐसा होना भी जरुरी है।[5]

मंत्री (अमात्य) प्रजा और राजा के बीच की एक कड़ी के रुप में कार्य करता था। राजघराने के व्यक्ति भी अपनी बात को मंत्री के द्वारा राजा के पास पहुँचाते थे। मंत्री राजा के सबसे निकट के व्यक्तिओं में से एक होता था। प्रवीणसागर में इस बात का कईबार उल्लेख मिलता है। जब राजकुमारी द्वारावती जाने

---

1. अक्षयरस -संपा. डॉ. कुँअरचन्द्रप्रकाशसिंह - राम रसिया अंग - 80/23
2. महेरामनसिंह कृत प्रवीणसागर का आलोचनात्मक अध्ययन- मोहब्बतसिंह चौहान - पृ. 50 (अप्रकाशित शोध प्रबंध)
3. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - द्वितीय तरंग- 9
4. बोम्बे गजेटियर - (भाग- 5) पृ. 141
5. मुघलकालीन गुजरात - डॉ. नवीनचंद्र आचार्य, पृ. 105

की अपनी इच्छा मंत्री को बताकर उनके व्दारा राज आज्ञा माँगती है और मंत्री महाराज से निवेदन करते हैं, किन्तु महाराज जब जाने की आज्ञा नहीं देते तो, राजकुमारी अपने व्दारावती जाने के प्रण को दोहराते हुए मंत्री से कहती है, आखिर मंत्री राजा को समझाते हैं, जिसे राजा मंत्री की सलाह मानकर उसे जाने की आज्ञा देते हैं।

उन बात भाखि आमात प्रति, महाराज सासन मगिय।

XXXXXX

कीनी अरज अमात, कुमरि उकू छितिपाल प्रति।[1]

XXXXXX

नृप अयला अमायत मग्गे, कलाप्रवीण बर्जने लग्गे।

कुमरी तब अमात प्रति बोले, अब चित बात आपसे खोले ।।

.... सो अमात सुनि नृपयै आये, सुपन भेद कहि के समुझाये ।।

नृपने सत्य बात तब चीनी, कुमरि गमन की आवस दीनी।[2]

अखा की एक उक्ति से पता चलता है कि तत्कालीन राज्य व्यवस्था में कितने ही वजीर अपनी मनमानी करते थे और अपनी इच्छानुसार कार्य करते थे। अयोग्य और अबुध राजा के राज्य में यह होना संभव भी है –

राजा सदा ये रहे अबुधा।

बझीर स्वतंत्र! न चाले सूधा![3]

उपर्युक्त विवेचन में प्रधान, अमात्य, मंत्री, वजीर आदि जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वस्तुतः उनका कार्य एक ही था। वह राजा के सलाहकार के रुप में अति निकट के व्यक्ति के रुप में प्रतिष्ठित थी, किन्तु मध्यकालीन कवियों ने उनके लिए इन्हीं नामों का प्रयोग किया है। हिन्दूओं के अनुसार प्रधान, अमात्य का प्रयोग तो मुस्लिमों (मुगल) के लिए वजीर शब्द का प्रयोग हुआ है। प्रो. अल्तेकर ने प्रधान शब्द को प्रधान–मंत्री का वाचक बताया है। साथ–साथ उन्होंने प्रधान को सर्वदर्शी–संपूर्ण राज्य–कार्य पर नजर रखनेवाला बताया है।[4]

जबकि मुस्लिम विचार अलमावर्दी के अनुसार मन्त्रियों की दो श्रेणी – वजीरे तफ़विद और वजीरे–तनफीद होती थी। पहला योग्य मन्त्री के रुप में सारे राज्य का कार्यभार संभालता तो दुसरा राजा की आज्ञानुसार

1. प्रवीणसागर –संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 52/3,4
2. वही, लहर – 52/6
3. अक्षयरस –संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह – भजन – 6
4. स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्सियेन्ट इण्डिया – प्रो. अनन्त सदाशिव अल्तेकर, पृ. 161

कार्य करता था।[1] अकबर दरबार के विद्वान लेखक अबुल फजल ने वजीर को तौहीदे इलाही का अनुगामी (उदार धार्मिक दष्टिकोण वाला), कुशल गणितज्ञ, लोभ रहित होना आवश्यक माना है।[2]

✲ राज्य कर्मचारी – प्रशासनिक वर्ग : राजा की सहायतार्थ प्रधान (मंत्री) के अतिरिक्त दूसरे अनेक राजकीय पदाधिकारी होते थे, जो समय-समय पर अनेक कार्यों से राज्य संचालन में सहायता प्रदान करते थे। जैसे कानून की स्थिति बनाये रखने के लिए कोतवाल, न्याय व्यवस्था के लिए काजी, सैन्य संचालन के लिए सेनापति, खूफिया जानकारी के लिए गुप्तचर आदि अनेक कर्मचारियों की सहायता से राज्य का संचालन होता था।

कच्छ राज्य में इन कर्मचारियों के अतिरिक्त भायात होते थे, जिन्हें समय-समय पर राजा द्वारा परामर्श के लिए आमंत्रित भी किया जाता था। कवि ने इन्हें सुदृढ़ शरीर के और कोमल स्वभाव वाले सामंत के रुप में वर्णित किया है-

साहसी सूर सामंत सीम।
भोरे सुभाउ भारुत्थ भीम।[3]

इनके अतिरिक्त अन्य गणमान्य व्यक्तिओंमें जिन्हें कवि ने अमीर, उमरावों के रुप में गिनाया है। उसमें पठान, मुगल, शेख आदि हैं।

सुव सहे राज कुसलेस जोर। ठहरें अनादि उमराउ ठोर।
सैयद पठान अरु मुगल शेष। ए ही अमीर अटकरि अशेष।[4]

जहाँ अमीर और सामंत गण परामर्श देने का कार्य करते थे वहीं प्रशासनिक वर्ग नगर प्रशासन को सुचारु रुप से चलाने के लिए अपना सहयोग देते थे। नगर के अनुशासन में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता था। इन प्रशासन अधिकारियों में काजी जो न्याय देने का काम करते थे, कोतवाल कानून और व्यवस्था की स्थिति बनाये रखने का काम करते थे। गुप्तचर शासक को राज्य की समस्त सुचनाएँ पहुँचाते थे। चतुर नागर लोग राजकीय सेवा का कार्य करते थे। मुनसी और पचौरी भी अपना दायित्व निभाते थे। दिग्विजय

1. सम आस्पैक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेठन - आर.पी. त्रिपाठी, पृ. 161,162
2. आइन-ए-अकबरी (वोल्युम- I)- एच. एस. जैरेट, पृ. 6
   He must be a member of the Divine faith, a skilful arithmatician, free from avarice, circumspect, warm-hearted, abstinent, ... clear in his writing, truthful, ... in his work.
3. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - द्वितीय तरंग- 13
4. वही - द्वितीय तरंग- 20,21

सेना का सेनापति और बलवान सैन्य भी होता था। नगर के शासन तंत्र को सुधारने के लिए सूबानवीसों, बाकियानवीस, अरजीनवीस भी थे। राजा के वकील प्रजा के कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न कराने का उत्तरदायित्व लिए हुए थे। अन्यों में दरोगा, पेशकार, कारकून व जमादार आदि अन्य छोटे कार्य संभालते थे। वस्तुतः यह अधिकारी वर्ग राज आज्ञा और फरमानों के अनुसार कार्य करते थे –

काबिल कुरान इनसाफ शुद्ध पानी सुपानि औ दुध दुध।
काजी कजाहिं यौ करत दाय। सायदी रापि मुल्ला सहाय।[1]
दुष्ट जिहि दंड, सजननि दिलाय। षिलतहीं देत कुतवाल खास।
कुफियानिवीस बाकानिवीस, अरजीनीवीस मनि अरज ईस।[2]
नागर समूह षिजमति निधान। मुनसी रु पचोरी गन प्रमान।[3]
सेनापति सेना बल उपाय दिवबिजय करत दिसि दिसि दबाय।[4]
कुँरेस अरातिब के नवीस। सूवानवीस सुधरन हिसीस।
केउ रहत करोरी कठिन हीय। मुफती अमीन हैं मस्त जीय।[5]
हे काज त्वररित काज ढील। यों रहत कोरि नृप के उकील।
पुनि धने दरोगे पेसकार। अति कारकून ओरे अधार।।[6]

प्रशासनिक वर्ग अपने कार्यों में तभी सफल हो सकता है, जब राज्य का प्रत्येक वर्ग अपने दायित्व को समझते हुए पूर्ण सहयोग दे।

उपर्युक्त पंक्ति में आये 'केउ रहत करोरी कठिन हीय' में 'करोरी' जो दंड का काम करता था। करोरी एक राज कर्मचारी के पद का नाम था, जो वर्तमानकालीन तहसीलदार के समान होता था।

जबकि वाकिया-नवीस, खुफियानवीसों का काम राज्य में घटित घटनाओं से राजा को अवगत कराना था। डॉ. जदुनाथ सरकार ने मुगलकाल में प्रान्तों की गतिविधियों की सूचना प्राप्त करने के लिए वाकिया-नवीस, सवानिह निगार और खुफियानवीसों की नियुक्ति दिखाते हुए मत व्यक्ति किया है कि बहुत से वाकियानवीसों की प्रांतीय अधिकारियों से मिल कर, वहाँ की सच्ची सूचनाएँ न देने की संभावना रहती थी, अतः अन्तिम दो प्रकार के भी खुफिया विभाग के अधिकारी नियुक्त किये जाने लगे थे। अंततः हरकारों के माध्यम से भी इष्ट साधन किया जाने लगा था।[7] जबकि बर्नियर ने उल्लेख किया है कि वाकिया नवीसों के प्रांतीय शासकों से मिल जाने के कारण प्रजा पर उनके द्वारा किये जानेवाले अत्याचारों की दिल्ली के शासकों को सूचना नहीं मिल पाती।[8]

---

1 से 6 लखपति जस सिंधु – संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, द्वितीय तरंग – 16,17,14,15,18,19

7. देखिए – मुगल एडमिनिस्ट्रेशन – पृ. 71,72,73

8. देखिए – बर्नियरनो प्रवास – अनुवाद – मणिलाल भट्ट, पृ. 175,76

प्रवीणसागर में हलकारों को राजघराने के व्यक्ति अपना गुप्त काम सौंपते थे, इसके निर्देश मिलते हैं।[1]

अन्य एक स्थान पर राजकुमार सागर अपने मित्र भारतीनन्दन को गुप्त काम के लिए चुनते हैं। वस्तुतः तत्कालीन समय के राजाओं का विश्वास भाट-चारण जाति के व्यक्तियों पर खास रुप से था, ये अपनी बात के पक्के हुआ करते थे। अतः राजा इन पर बड़ा विश्वास रखते थे और गुप्त कार्य के लिए उन्हें ही चुनते थे।[2] — 52/11,14,15

शासन व्यवस्था में सही व्यक्ति को बिठाने से राज्य की उन्नति और प्रजा की सुरक्षा का प्रश्न हल हो जाता है, उसे प्रवीणसागर में रुपक के माध्यम से समझाया गया है।

बहेरामसे वजीर, बकसी फरास जेसे, फूल फरमानी, धन आनंद कूजा इकी।

पुनासे प्रचंड मीरं, रांझन से वीर जहाँ,....[3]

इस प्रकार के चित्रण के अतिरिक्त तत्कालीन शासकीय व्यवस्था के दूसरे पक्ष, जो अत्याचार और अशांति को ही उजागर करता है, का वर्णन भी गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने किया है। विषम परिस्थितियों में यह प्रशासनिक वर्ग जनता के लिए सुरक्षा के स्थान पर किस प्रकार अत्याचार और भय का कारण बन जाते हैं, इसके कई वर्णन हमें मिलते हैं।

अखा ने इसी प्रकार की अशांति का वर्णन किया है। जहाँ का राजा अबुध है और प्रजाजन अपनी मरजी के अनुसार कार्य करते हैं। चोर लोग प्रजा को नित्य लूटते हैं। जहाँ राजा का महल भी इस बात से अछूता नहीं है, वहाँ की किल्लेबँधी खोखली होती है और अयोग्य राजा के होने के कारण वजीर भी मनमानी करता है। अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति भी इस प्रकार के शासन से अनजान बने फिरते हैं।[4]

तत्कालीन न्याय की स्थिति भी पक्षपात से भरपूर थी। इस युग में कोइ लिखित न्याय प्रणाली तो विकसीत थी नहीं, अतः अकसर हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े में न्याय तत्कालीन शासकों (मुस्लिमों) का पक्षपात करता था। अर्थात् काजी एवम् न्याय सिर्फ दिखावा मात्र था।[5] सजा स्वरुप फांसी (मोत की सजा) या कारावास में डाल देने के निर्देश मिलते हैं।[6]

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 21/18
2. वही - लहर - 52/11,14,15
3. वही-लहर - 58/15
4. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, भजन- 6
5. वही - कजा को अंग- 77/3,8

   कजा सो साची अखा कजा करे तहकीक
   साना संभाले आपणा आपा मिटया लोहो लीक।

   X X X X X

   ए चीत कया कजा करे बजा एन की और।
   हुकम बिगर रहलता नहीं पीपल पान एक ठोर॥
6. अक्षयरस - संपा. डॉ. कुँअर चन्द्र प्रकाशसिंह, झूलणा - (19)

वस्तुतः मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में न्याय, कानून और शासन व्यवस्था में गिरावट आयी थी। सामाजिक अत्याचार और अन्याय बढ़ रहे थे। दीन-गरीबों के मामले में न्याय भेदभावयुक्त होता था क्योंकि बडे लोगों के स्वार्थ इसमें छिपे रहते थे। क्योंकि जब शासन ही अनीति और अत्याचार पर टिका हो तब सत्य का समर्थन कौन करता है ? कवि दयाराम के समय में इसी प्रकार की स्थिति व्याप्त थी उन्होंने उसका विरोध करते हुए लिखा है-

दुस्तर या संसार में धर्म न्याय नहीं दाव;

निनैठानै नृपादिक जो जौरावर भाव।[1]

तत्कालीन समय में मराठों का शासन था और इतिहास के प्रमाणों से भी यह ज्ञात होता है कि न्याय सत्य के नहीं सम्पत्ति के पक्ष में हुआ करता था।[2] इसलिए दयाराम ने कहा कि अधर्म का पक्ष लेने वालों को अधर्मी की उपाधि दी जानी चाहिए -

अधर्म पच्छ न कीजियें, तुच्छ दिखे निज रुप।[3]

मध्यकाल के प्रसिद्ध संत निरांत साहब ने भी पक्षपात भरे न्याय की बात करते हुए तत्कालीन पदाधिकारियों पर व्यंग्य करते हुए उनके अत्याचार की सीमा को दर्शाया है-

गरीबकूं तुम गोदा देते, बकरी मुरघी मारो।

अली तुमारी अदल चलाणी, पल में जी ले डारो।[4]

सन्त दादू ने भी समसामयिक राजनीतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए एतद्विषयक वर्णन किया है। जिसमें तत्कालीन प्रशासनाधिकारियों को सत्य, न्यायपूर्ण व्यवहार, प्रेम एवम् सेवाभाव का व्यवहार जनता से करने के लिए कहा गया है, क्योंकि सत्य का अनादर करने और असत्य का पक्ष लेने से उन हाकिमों, दिवानों को बादशाह के दरबार में जवाब देना पड़ेगा -

हुसियार हाकिम न्याय है सोई के दीवान।

कुलि का हसेव होगा, समझि मुसलमान।।

नियनि नेकी सालियां, रास्ता ईमान।

इषलास अंदरि आपणै, रषणां सुवहान।।

XXXXXX

---

1. दयाराम कृत काव्य संग्रह - संपा. नर्मदाशंकर लालशंकर - पृ. 418
2. दि कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, वोल्युम-V, पृ. 389
3. दयाराम कृत काव्य संग्रह - संपा. नर्मदाशंकर लालशंकर - पृ. 412
4. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर - पृ. 218

दोस्त दानां दीनका मनणां फुरमान ।।

गुसा हेवानी दूरि करि, छाड़ि दे अभिमान।

दुई दरोगां नहीं, षुसियां, दादू लेहु पिछाणि ।।[1]

इस मान्यता से स्पष्ट है कि दादू ने ऐसे हाकिमों को सचेत करते हुए निरीह प्रजा पर अत्याचार न करने और धर्म-भावना को अपनाने का संदेश दिया था -

जोर करे मसकीन संतावे, दिल उसके में दरद न आवे।

सांइ सेती नाही नेह, ग्रव करै अति अपणी दैह ।। [2]

'प्रवीणसागर' में भी एतद्विषयक कई निर्देश रुपक के माध्यम से आये हैं। एक स्थान पर रुपक के माध्यम से महाराज को अभिलाषा पूर्ण गद्दी पर बिराजमान बताकर, चिन्तारुपी कुमार, स्मृति और उद्वेग ये दो प्रधान, जडता और गुणकथन रुपी दो अमीर, उन्माद और प्रलाय दो हाकिम और व्याधि और मरण रुपी न्यायाधीश का चित्रण शरीररुपी नगरी के निवासी के रुप में किया है।[3] आगे इसी प्रकार रुपक के माध्यम से कवि कहता है कि विरह रुपी सूबा हृदयरुपी नगर को अग्नि से तपाकर नेत्ररुपी आंसु में बांकेगढ को डूबाकर नगर की सुख-शांति को छीनकर, मन रुपी मजूमदार को ग्वालियर के किल्ले में बंद कर दिया। आगे और दुःख रुपी दिवान को लेकर सिंहासन को हड़प लिया-

उर पुर पैठो जारि, ज्वलन नमाय लीजो, नैन गढ़ टेठो जल, नलन डुबोयो है।

सुख साज राज को, बिखेरि के बिदाय दीनो; मन मजमुन ग्वालियर ले चढ़ायो है।

प्राण तख्त बैठो आय, दुख के दिवान जुत, विरह विकट सूबा, अमल जमाया है।[4]

अन्य एक वर्णन में शासन बाज के हाथ में, वजीर को काक की उपमा, सकरा,जगरा को न्यायाधीश। जुरा, लगरा दोनों पक्षी राजसभा के प्रमुख सदस्य, बेरी और कुही को कोतवाल तथा बासा तथा तुरमंची पक्षी को सेवा विभाग में नियुक्त बताकर इन सबने मिलकर इन सारसी को पिंजड़े में कैद कर रखा है-

---

1. दादूदयाल ग्रंथावली- संपा. परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 429-30
   किवन्दती के अनुसार साभर के हाकिम बुलन्द खां को उसके अत्याचार के कारण दादू ने उसे बादशाह अकबर के दरबार में हिसाब देने के प्रति सचेत किया था।
2. वही - साच को अंग- 13/21
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 33/8,
   राज महा अभिलाष विराजत, चिन्त है राजकुमार विचिच्छन।
   स्मृति और उद्वेग वजी, अमीर दुहू जड़ता गुण कत्थन ।।
   हे हकमी उनमाद प्रलापहि, व्याधरु शेष निआउ चुकावन।
   सागर शाह स्नेह की आयस, यातन नग्र दुहाई फिरी इन ।।
4. वही - लहर - 33/1

बाज को राज बिराजे वजीर, कुहानकि आन फिरी है धरामें।
न्यायकरा सकरा जगरा दो जुरा लगरा है अमीर सरामें ।।
बैरी कुही कुटवाल बने अरु, बास त्रुमंचि कुजाक गिरामें।
सागर मिंत यहे सिगरे मिल, सारसि मारि धरी पिंजरामें ।।[1]

रुपक के माध्यम से 'प्रवीणसागर' में आये एतद्विषयक वर्णन से यही फलित होता है कि प्रशासन वर्ग ने किस प्रकार राज्य या नगर की शासन व्यवस्था पर अपनी पकड़ जमाई थी। जब सुरक्षा करनेवाले ही शोषण करने लगें तो जनता किस प्रकार त्रस्त हो जाती है उसके कई उदाहरण हमें मध्यकालीन साहित्य में मिलते हैं। अच्छे सेवकों के बिना राज्य का कार्य नहीं चल सकता। इसीलिए स्वामी की अपेक्षा अच्छा सेवक श्रेयस्कर है। जो आज्ञाकारी हो और अपने कार्य में दक्ष हो, किन्तु उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि यह प्रशासनिक वर्ग कितनी बार राजा को भी बंधन में रखकर अपनी मनमानी करते थे, तो कई बार राजा को ही शासन से निलंबित करते हुए खुद शासन को अपने हाथ में ले लेते थे। यह सब परिस्थितियाँ मध्यकाल के अस्थिर राजनीतिक स्थिति को ही प्रकट करती हैं।

इन सब परिस्थितियों को देखकर ही शायद समर्थदास ने राजनीति व उसके पदाधिकारियों पर व्यंग्य करते हुए राज्य को नेतृत्वरहित कहकर उसका सच्चा चालक तो ईश्वर या किसी अज्ञात नर को बताया है-

सुलतान सेनापति साहिबा चले गये, जखदे काजी अरु शेखनाजी,
सांई सम्रथ के यार दिन पावको, कोनसा नर तूहीं लेखनाजी।[2]

तत्कालीन समय में राजा तथा अन्य राजघराने के व्यक्ति जब किसी यात्रा पर निकलते तो उनकी व्यवस्था की जवाबदारी भी प्रशासनिक अधिकारियों पर रहती थी, जो उनके साथ यात्रा में सम्मिलित होते थे। सुरक्षा से लेकर संपूर्ण सुविधा का ख्याल रखना उनका कार्य था।

'प्रवीणसागर' में इससे सम्बन्धित कई वर्णन मिलते हैं। राजकुमारी प्रवीण के द्वारका यात्रा में उसके साथ जो राज्य कर्मचारी थे, उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है-

कुमरी की तैनात में, दीवान कराया, पैदल पंचहजार का, हुकम फुरमाया।
सात बड़े सिरदार से, परियान कहाया, सिलेपोस दो सहस सो, रथसंग चढाया।[3]

साथ में अन्तःपुर की रानियाँ भी उसके साथ जाती हैं, और परम्परानुसार घर के बुजुर्ग स्त्रियाँ भी देखभाल हेतु जाते हैं।

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 48/19
2. गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी - डॉ. अम्बाशंकर नागर- पृ. 48
3. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 52/8

बुद्ध जनाना राजसे, रथसाथ चलाया।[1]

अन्य एक स्थान पर महाराज नीतिपाल के गमन का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन मिलता है।[2]

वस्तुतः मध्यकाल संक्रान्ति का काल कहा जा सकता है और यही स्थिति गुजरात के मध्यकाल में भी रही, क्योंकि गुजरात का शासन दिल्ली के शासक द्वारा भेजे गये सूबों द्वारा होता रहा है। तो दिल्ली शासन का सीधा असर गुजरात पर भी रहा। अर्थात् मध्यकाल को हम शांति, अशांति मिश्रित वातावरण का काल कह सकते हैं। अकबर का समय शासन का सुवर्ण युग था तो औरंगजेब और बाद में मराठों के शासनकाल में आतंक, अत्याचार का शासन रहा।

प्रस्तुत समयावधि के प्रारंभिक वर्षों में उदीयमान मुगल सल्तनत के साथ अमीरों और मिरजाओं के संघर्ष (सन् 1572-92) तथआ शेष वर्षों में (सन् 1609) में दक्षिण भारत के राजा मलिक अंबर की गुजरात पर चढाई, सन 1621 में जहाँगीर के खिलाफ शाहजहाँ की बगावत, (सन 1631-32) का भयंकर दुर्भिक्ष, औरंगजेब के द्वारा (सन् 1644) में अहमदाबाद के सबसे बड़े जैन मंदिर चिंतामणी में गोहत्या कर उसे मस्जिद में बदल देना, बादशाह मुरदाबख्श की (सन् 1657-58) आपमुरादी तथा (सन् 1664) में शिवाजी द्वारा सूरत शहर को लूटना आदि दुर्घटनाओं से गुजरात सचमुच संत्रस्त हुआ।

इस राजकीय अंधाधुंधी में जनता का शोषण आम बात हो गयी थी, न्याय, कानून और व्यवस्था की स्थिति बहुत बिगड़ गयी थी। राजाओं के आपसी झगड़े का फायदा तत्कालीन प्रशासनाधिकारी उठाकर जनता पर अत्याचार और उसका शोषण करते थे। बाजीराव द्वितीय की शासन व्यवस्था का परिचय देते हुए एक अंग्रेज इतिहासकार ने उसकी पुलिस के सम्बन्ध में लिखा है।[3]

तथापि विभिन्न नदियों एवं पहाड़ियों से सुरक्षित, धन-दोलत से अतीव समृद्ध एवं बेहद उपजाऊ गुजरात की विशाल भूमि पर इन हरकतों का वैसा ही असर पड़ा जैसे किसी आपूर्ण जलाशय से बड़े घटादि बर्तनों के द्वारा थोड़ा बहुत पानी उलीच लेने पर उसके पानी पर पड़ता है। अर्थात् छोटे-बड़े झंझावातों के बावजूद गुजरात प्रायः विकासमान, शांत एवं उत्तरोत्तर समृद्ध होता रहा। इसके पीछे गुजराती समाज की आपसी एकता, समझदारी और उनकी संगठनात्मक शक्ति का भी विशेष योगदान रहा है। बड़े-बड़े से संकट का भी एकजुट होकर सामना करना और उससे बाहर निकलकर नव-निर्माण करना, अपने व्यवसायों को पुनर्गठित करना गुजराती समुदाय की विशेषता रही है।

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 52/8
2. वही - लहर - 35/13
3. दि कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, Vol. V, पृ. 393

   As a class they were shamelessly corrupt they constantly extorted money by means of false accusations and were often hand in glove with avowed gobbers and outlaws.

(इ) सैन्य व्यवस्था :

राज्य की सुरक्षा का प्रश्न सैन्य–व्यवस्था से जुड़ा हुआ होता है। अतः सशक्त सेना किसी भी राजा के राज्य का अभिन्न अंग होती है। हम पीछे देख आये हैं कि मध्यकाल में राजा अपनी सुरक्षा व्यवस्था के प्रति कितने सजाग थे और राज्य की आय का आधा भाग सुरक्षा एवम् सैन्य के पीछे खर्च करते थे। वस्तुतः इस प्रकार की सुरक्षा तत्कालीन समय में आवश्यक भी थी, क्योंकि राजाओं को एक–दूसरे से बहुत भय था। पड़ोसी राजाओं से भी राज्य को हमला होने की संभावनायें रहती थीं; इसलिए सुरक्षा के मामले में तत्कालीन राजा बहुत गंभीर दिखाई देते हैं, और किसी भी प्रकार का समझौता इस विषय में नहीं करते थे।

✲ सेना के प्रमुख अंग : आलोच्यकाल में सेना के लिए चतुरंगिणी विशेषण प्रयुक्त किया गया है, और यह परम्परागत चार–अंगों के रुप में वर्णित हुआ है। प्रवीणसागर में एक स्थान पर सेना के वर्णन में राजा की सेना के चार भाग का स्पष्ट विवरण प्राप्त हुआ है, जिसमें – गज सेना, घुड़सवार सेना, रथ और पैदल सेना सम्मिलित हैं–

सैल करन सेना सजी, नीतिपाल नरनाह।
हज, हय, रथ, पैदल चले, यह चतुरंग अथाह।[1]

यह चतुरंगिणी सेना अपने अपने दल में विभाजित होती थी और सुसज्जित हाथी और घोड़ों के ऊपर अनेक डंका, निशान, दुंदुभि गड़गड़ा रहते थे। साथ में पंचरंगी ध्वज–पताकाएँ लगी हुई होती थीं। क्रनाल, सहनाई और नकीब की घोर ध्वनि की जाती थी। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो अठारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई हो।[2]

✲ गज सेना : मध्यकालीन समय में युद्धों कें अवसर पर हाथियों का प्राचीनकालीन युद्धों की भाँति अप्रतिम स्थान तो न था,[3] किन्तु फिर भी उनका युद्धभूमि में पर्याप्त महत्व था। राजा युद्ध के लिए हाथी पर ही सवारी करते थे और कई दृष्टि से उपयोगिता होने के कारण उनकी संख्या भी पर्याप्त मात्रा में रखते थे–

इक गज नृप आरुढ, नाम दिय तास मुकुटमनि।[4]
X X X X X
उभै नृप कुंजरपै असवार,[5]
X X X X X
सवा अनुमान हसत सत;[6]

---

1. प्रवीणसागर –संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 12/1
2. वही – लहर – 12/2
3. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् – अनुवाद : पं. गंगाप्रसाद शास्त्री – 14/82
   आचार्य चाणक्य ने हस्ति सेना का महत्व इस प्रकार दर्शाया है–
   "हस्तिनोप्रधानो हि विजयो राक्षाम्। परनीक व्यूह दुर्ग स्कन्धावार प्रमर्दना हति प्रमाण शरीराः प्राणाहरण कर्माणो हस्तिन इति।"
4. प्रवीणसागर –संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 2/5
5. वही – लहर – 13/32
6. वही – लहर – 12/13

अन्य एक स्थान पर राजा नीतिपाल की सेना में गज सेना का वर्णन करते हुए कवि ने उन हाथियों की तुलना इन्द्र के ऐरावत हाथी से की है। हाथियों के समूह का वर्णन करते कवि ने गजों के मस्तक पर सिंदूर लगा होने तथा उन पर जर की झूल पड़ी होने तथा उनको काले और अति विशाल होने का वर्णन किया है। शरीर पर रत्नों से जड़ी हुई सोने की अम्बारी भी लगी रहती थी ; साथ में सुनहरी कलगी के साथ सिर पर माला और अंकुश लगे रहते थे।[1]

एक स्थान पर ऊंची जाति के हाथी का वर्णन भी आया है, जिस पर महाराज बिराजमान रहते थे और राजा का हाथी होने के कारण उसे हीरा, माणेक से सुशोभित कर शिर पर छत्र भी धारण करवाया जाता था। अन्य उमरावों को भी गजारुढ होते दिखलाया गया है।[2] एक स्थान पर हाथियों पर छत्र धारण किये हुए सरदारों को भी दिखलाया गया है।[3] हाथियों के अन्य उपयोग राजकीय पताका, ध्वजों और निशानों को युद्धस्थल में ले जाने के लिए किया जाता था।

बजि निसान बहु विध, गजह शिर दरक अश्व गनि।[4]

धरें पख्खरं पीठ गज्जं सु धज्जं,...[5]

तात्पर्य यह कि तत्कालीन समय में भी सैन्य व्यवस्था की दृष्टि से हाथियों का पर्याप्त महत्व था और उनका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता था।

घुड़सवार सेना – अश्वारोही सेना : आलोच्यकालीन सेना में सर्वाधिक संख्या अश्वारोही सैनिकों की ही होती थी–

लख दोय बाज, पख्खर लगंत,...[6]

पढ़े कितनेइ सु कोतल पंत, चमू कितनेइ सुवीर चढंत।[7]

असी सहस अस चढिय....[8]

---

1. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 12/4
2. वही – लहर –12/5
3. वही– लहर – 13/17
4. वही– लहर – 12/2
5. वही– लहर – 13/19
6. वही– लहर – 7/2
7. वही– लहर – 12/6
8. वही– लहर – 12/13
9. वही– लहर – 13/10
10. वही– लहर – 13/4

एक स्थान पर घोड़ों को बहुत तेज बताते हुए उसको पृथ्वी पर गतिवान पवन की उपमा दी है।[1]

'प्रवीणसागर' में अश्वसेना के वर्णन में तुर्की चाल से चलने वाले घोड़ों जिनके सिर पर गजगाह नाम कलंगी रखी हुई होती थी, वे सवार के हुकम के अनुसार चलता है। जिसकी दौड़ तरकश से निकलते हुए तीर की तरह होती थी। शेर के पीछे के छटादार केशगुच्छ के समान जिसकी केशावलि तथा विशाल छाती का वर्णन किया गया है।[2]

उपरोक्त तुर्की चाल से चलनेवाले घोड़ों का जो वर्णन आया है, वह ऐतिहासिक महत्व रखता है। मुगल दरबार के विद्वान अबुल फजल ने अरबी और इरानी घोड़ों के अतिरिक्त भुज (कच्छी) तथा तुर्की घोड़ों का उल्लेख किया है।[3]

मध्यकालीन सन्त कवि दादू ने भी श्रेष्ठ घोड़ों के लिए ताजी शब्द का प्रयोग करते हुए चंचल मन को ताजी घोडे की उपमा प्रदान की है, और उस पर ब्रह्म ध्यान की लगाम लगाने का आदेश देते हैं–

मन ताजी चेतनि चढै, ल्यौ की करे लगाम।[4]

'प्रवीणसागर' में अनेकों स्थान पर 'कोतल'[5] चाल से चलते हुए घोडों का वर्णन है।

पढे कितनेई सु कोतल पंत...[6]

अन्य एक वर्णन में भड़कते हुए कोतल घोड़ों को वीरों ने पकड़ रखा है –

पराबंध वीरं सुवांज ग्रहे।। [7]

एक स्थान पर आये वर्णन से ज्ञात होता है कि वहाँ के स्थानिक बाजार से ही घोड़ों को खरीदा जाता होगा–

लए बाज दस बीस, ...

X X X X X

बाज खरीदन पट्टहिय,[8]

एक स्थान पर कवि ने शालिहोत्र ऋषि के ग्रंथ में घोड़ों की परीक्षा के जो भेद किए गये हैं उसके आधार पर पूरे अश्वशास्त्र का सविस्तार वर्णन किया है।[9]

घोड़ों को शिकार[10] के समय तथा ध्वजा–पताका[11] लेकर युद्ध करते समय उपयोग भी होता था।

1-2 प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 13/19

3. आइन–ए–अकबरी –Vol. I, एच. एस. जैरेट, पृ. 244
   हिन्दूस्तानी श्रेष्ठतम घोड़े ताजी घोड़ों के नाम से प्रसिद्ध थे। उससे मध्यम श्रेणी के घोड़े जंगला तथा निम्नतम कोटि के टट्टू कहलाते थे।

4. दादूदयाल ग्रंथावली – संपा. परशुराम चतुर्वेदी, गुरुदेवजी को अंग – 1/127

5. छत्रप्रकाश – डॉ. श्यामसुन्दर दास – पृ. 76
   "उसका कोतल चाल चलना उस दशा को कहते हैं, जिस में अश्व पर जीन तो कसी हो किन्तु कोई सवार न हो और उसे धीरे–धीरे चलाया जा रहा हो।"

6. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर – 12/6

7. वही – लहर – 12/12
8. वही – लहर – 22/7,8
9. वही – लहर – 22/12-24
10. वही – लहर – 13/3,4
11. वही –लहर –12/2, 13/19

✲ रथ-सेना :

सेना में अनेक रथों का होना, जिसकी डोर रेशम से बधी हुई होती थी, जिनके उपर सोने के दंड और स्वर्णमाणिक जटित वस्त्रों की छतरियां होने का वर्णन आया है। साथ में कितने ही रथों में घोड़ों की जगह बैलों को भी जोता जाता था, ऐसा उल्लेख हुआ है। उनके ऊपर मखमल एवम् काचिवी का मुख पड़ा होता था। उन रथों पर अनेक रंगों की ध्वजा-पताका भी हुआ करती थी और रथ के मध्य भाग में धनुष एवम तरकश से सुसज्जित उमरावगण बिराजमान रहते थे।[1]

छोटे से छोटे राजाओं के पास भी हाथी, रथ, सुखपाल की किसी प्रकार की कमी नहीं होती थी।[2] तत्कालीन समय में बारात में भी बड़ी संख्या में रथ लेकर जाया जाता था।[3] रथों का वस्तुतः स्त्रियों द्वारा उपयोग अधिक किया जाता था, राजघराने से लेकर नाचने वाली वारांगनाएँ और राजकुमारी की सखी कुसुमावती द्वारा अपने आनेजाने के लिए रथ के उपयोग के उल्लेख मिलते हैं।[4]

✲ **पदाति-सेना** : प्रवीणसागर में चतुरंगिणी सेना वर्णन में पैदल सेना का वर्णन हमें इस प्रकार मिलता है। पैदल सेना में आगे झंडेवालों की पंक्ति होती थी, जो विविध प्रकार के वाद्यों को बजाते हुए चलते थे। और यह भी ज्ञात होता है कि किसी प्रकार से उनके वस्त्र एक जैसे नहीं थे। सबने अलग-अलग रंग के वस्त्र पहने थे। सेना में फिरंगी, कर्णाटकी, रुमी, हिन्दुस्तानी, सिंधी, मराठी, बंगाली आदि सभी प्रदेश के लोग शामिल थे। जिन्होंने क प्रकार से आयुधों को धारण किया होता था। राजाज्ञा के अनुसार अपने प्राण भी न्यौछावर करने के लिए तत्पर रहते थे। वह अपनी अपनी टुकड़ी में अनुशासन से चलते थे।[5]

तत्कालीन सैन्य व्यवस्था में यह एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि पुरानी सेना को बनाये रखते हुए नये सैनिकों की भरती भी की जाती थी।[6] इससे यही स्पष्ट होता है कि राज्य की रक्षा के लिए जो अपना जीवन व्यतीत करता था, उसे अपनी आगे की जिंदगी में भी राज्य से सहायता मिलती रहती थी। वर्तमान समय में भी इसी प्रकार के लाभ सेना की नौकरी से सेवानिवृत्त लोगों को मिलते हैं।

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 12/7, 13/19
2. वही - लहर - 11/1, 12/13
3. वही - लहर - 15/10,
4. वही - लहर - 17/3, 37/14,24/2
5. वही - लहर - 12/8
6. वही - लहर - 8/7

पाय-दल सम्बन्धित कई उल्लेख हमें मध्यकालीन काव्य में मिलते हैं। अधिकतर वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं, क्योंकि पैदल-सैनिकों की अपार संख्या का वर्णन बहुत बार किया गया है।

'प्रवीणसागर' में आये एतद्विषयक उल्लेखों में राजा प्रदीप की पदाति सेना की संख्या एक लाख पच्चीस हजार बताई गयी है।[1] तो राजा नीतिपाल के सैन्य में दो लाख घुड़सवारों के साथ-साथ असंख्य पैदल सैनिकों का होना उल्लेखित किया गया है।[2] अन्य एक स्थान पर राजा नीतिपाल की सैर करने के लिए नीकली सेना में श्वेत वस्त्रधारी एक लाख योद्धा होने की बात कही गयी है।[3] 'प्रवीणसागर' में ही आये हुए वर्णन में राजकुमार रससागर की बारात की आगेवानी करने के लिए गयी सेना में एक स्थान पर पांच लाख घोड़ों और पांच लाख पैदल सेना[4] तो दूसरे वर्णन में दस लाख घुड़सवार और अनुमानतः दस लाख पैदल सैन्य का वर्णन है।[5]

सैन्य-व्यवस्था के अनुसार पैदल सिपाही अपनी बनाई हुई व्यूह रचना के अनुसार आगे बढ़ते थे।[6] पैदल-सैन्य की एक-टोली को हमेशा बाएँ ओर पंक्ति बनाकर चलते चित्रित किया गया है।[7] युद्ध में सबसे ज्यादा जानहानि का सामना पैदल-सैनिकों को ही करना पड़ता था।[8] कभी-कभी बड़ी सेना को देखकर युद्धभूमि छोड़कर भाग नीकलती सेना का वर्णन भी किया गया है।[9] जबकि दादू ने आदर्श सैनिक उसे कहा है जो एक बार युद्ध भूमि में दाखिल होने के बाद कुछ भी अपने बारे में नहीं सोचता, और हिम्मत से सामना करता है, ईश्वर उसकी सदैव रक्षा करता है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि एक बार जो कदम युद्ध भूमि में शूरवीर ने लिया वह कभी पीछे नहीं आ सकता, यही शूरवीर की निशानी है-

जूयूं धूरा रिण झूमे, आपा धर नहिं बूझे।

सिकि साहिक काज संवारे, धण आयां डारै।[10]

X X X X X X

पीछैं को पग ना भरै, आगै को पग देइ।

दादू यह मत सूर का, अगम ठौर को लेइ।[11]

मध्यकालीन सन्त कवि अखा ने भी इसी प्रकार की बात को दोहराया है। अखा कहते हैं कि शूर का जब युद्धस्थल पर आगमन होता है, तो उसका मुख उत्साहित हो जाता है, जबकि कायर भयभीत हो उठता है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि शूरवीर सामने लड़ता है, तो कायर पीठ पर वार कर सकता है-

---

1से 9 प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 6/2,7/2, 12/13,5/10,15/14,12/12, 13/2,3,13/11, 13/8,9

10. सन्त सूधासार (दादू) - संपा. वियोगी हरि, पृ. 436

11. वही - पृ. 480

मरदु के मेरान में जब नीसान मडंत।

सुर मकलावत और हिजड़े त्रास पडंत।

XXXXXX

मरद लड़े सो मरद सु हीज सूं नारे नाहि।

सुरा अखा सनमुख लड़ै हीज सो मुख फीराहि ॥[1]

तत्कालीन समय में सेना के सैनिक के अन्य उपयोगों में राजकाज के काम से बाहर भेजे जानेवाले कर्मचारी की सहायता के लिए उसके साथ कुछ सैनिकों का होना भी उल्लेखित है।[2] सैन्य के साथ सांडनी सवार भी होते थे, जिससे समाचार या सन्देश लाने ले जाने का काम लिया जाता था क्योंकि उस समय ऊँट ही सर्वाधिक तेज गति वाली सवारी थी, जो कैसे भी मार्ग पर चल सकती थी।[3]

सेनाओं के वाद्य, पताकाएँ-निशान :

प्राचीन काल से ही भारत में सेनागमन, युद्धारंभ या अन्य राजकीय उत्सव के अवसर पर अनेक प्रकार के वाद्य बजाए जाते थे, यह परंपरा मध्यकाल में भी बराबर बनी रही। रण-वाद्यों का मूलोद्देश वीरों में रणोन्माद का संचरण करना होता था, जो सेनाओं के प्रयाण, आक्रमण के समय बजते थे। इसके साथ ही वीरों को युद्धार्थ सज्जित होने, युद्धारंभ करने तथा विजय आदिक तथ्यों की सुचना देने को प्रयोजनों में भी इनका प्रयोग किया जाता था।

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में इसका प्रचुर वर्णन मिलता है। प्रवीणसागर में एतद्विषयक कई उल्लेख प्राप्त हुए हैं। अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग प्रकार के वाद्य बजाए जाने के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु एक स्थान पर कवि ने छत्तीस प्रकार के वाद्यों का वर्णन किया है।

मंडल बीन रबाब.... षटह त्रिंस वाजिते बजे ॥[4]

अन्य एक जगह चढाई के समय भी छत्तीस प्रकार के वाद्य बजने की बात कही गयी है।[5] राजा सेर करने निकलता तब भी उसके साथ बजाने वाले रहते थे।[6] इसके साथ-साथ उत्सवों के समय भी अलग-अलग

1. अक्षयरस -संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह - सुरयमा अंग - 23/1,5
2. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर -11/6
3. वही - लहर- 13/13,14
4. वही - लहर-12/10
5. वही - लहर-12/12
6. वही - लहर-12/13

प्रकार के वाद्य बजते थे, प्रवीणसागर में शिवरात्रि के महोत्सव के दरम्यान बाँसुरी, श्रृंगी, पिनाक, आदि बाजों के साथ डाक, ढफ और डमरु तो कहीं शंख, झालर, नगारे तथा पाँच प्रकार के बाजों के बजने का उल्लेख मिलता है।[1] त्यौहारों के साथ-साथ राजा के यहाँ कुँअर के जन्म समय भी उत्सव का वातावरण बन जाता था। द्वार पर और शहर के पूरे भाग में नौबत और दुंदुभि बजती थी।[2] साथ में कुँवर के जन्म की खुशी से घर-घर ध्वज-पताका के साथ सुवर्ण-कलश शोभायमान होते थे।[3] कितनी जगह राजद्वारों पर दो-दो हजार दुंदुभि बजने के साथ-साथ पूरे शहर में अनेक प्रकार के बाजे बजने के अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख भी मिलते हैं।[4] राजकुमार सागर जब शिकार के लिए प्रस्थान करते हैं तब भी नौबत का बजना और निशानची का निशान लेकर दल के आगे चलना चित्रित किया गया है।[5] राजकीय कार्य से कोई जाता तो उसके साथ भी राजा के निशान और दुंदुभि बजाने वाले जाते थे।[6] अन्य स्थान पर चतुरंगी सेना के गमन में उसके साथ विविध प्रकार के निशान दुंदभी, डंके के नाद करते चलने का वर्णन किया गया है।[7] रथ-सेना के साथ विविध रंग की ध्वज पताकाएँ लगी रहने के उल्लेख मिलते हैं।[8] दो सेनाएँ जब आमने-सामने हो जाती थीं तो वह अपने निशान को खोलकर आगे बढ़ती थीं[9] और एक-दूसरे को देखते ही मारु बाजा बजाकर नगारे, रणशिंगा आदि के नाद द्वारा युद्ध करती चित्रित की गई हैं।[10] सैनिक गण मारो-मारो की गर्जना करते सिंधु राग गाकर अत्यन्त क्रोध से युद्ध करते थे।[11] इन रण-वाद्यों में इस प्रकार के राग का गाया-बजाया जाना ओजात्मक स्वरुप का प्रतीक था। सिन्धु-राग को वीर-रस का राग भी कहा जाता था, इसलिए युद्ध के समय सिंधु-राग के ओजात्मक कड़खे गाये जाते होंगे। युद्ध में विजयोपरांत अनेक प्रकार के वाद्य बजाए जाते थे और शूरवीरों की मुखाकृति वीर तथा रौद्ररस के गीत सुनकर ऐसी खिल उठती थी, मानो बारह सूर्य उदय हो गये हों।[12] जब दुश्मन आमने-सामने आ जाते थे तो दुश्मन पर नजर पड़ते ही नकीबों का स्वर होने लगता था और भयंकर स्वर से दुंदुभि बजती थी , जिससे दसों दिशाएँ गूँज उठती थीं, उसके साथ नौबत भी बजती थी, और सैनिक अपनी ध्वजाओं को अपने हाथ में पकड़कर रणशिंगे को बजाते रखते थे। इस सम्पूर्ण वर्णन से युद्ध स्थल का पूर्ण दृश्य ही मूर्तिमंत हो उठता है।[13] राजा ने युद्ध के लिए प्रस्थान के समय हाथी की पीठ पर अम्बारी लगाकर ध्वजा-धारण की, उस समय छत्तीस प्रकार के बाजे बजने लगे, घुड़सवारों की सेना के आगे पताका फहराने लगी और वीरों

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर 4/19
2. वही- लहर - 6/5
3. वही- लहर -6/5
4. वही- लहर -7/2
5. वही- लहर -9/4
6. वही- लहर -11/6
7. वही- लहर -12/2
8. वही- लहर -12/7
9. वही- लहर -13/6
10. वही- लहर -13/7
11. वही- लहर -13/10
12. वही- लहर -13/12
13. वही- लहर -13/16

के भुजदंड युद्धोन्माद से फड़क उठे।[1] मध्यकालीन सन्त अखा ने भी बाजा शब्द का प्रयोग किया है, जिससे सेना के आक्रमण के समय बजने वाले यंत्र का बोध होता है।[2]

संधि हो जाने का बाद दोनों राजाओं की सवारी में निशान और नकीब आगे पंक्ति बनाकर चलने और मधुर स्वर में दोनों सेनाओं में बाजा बजने का वर्णन भी किया है।[3] प्रवीणसागर में निशान शब्द का सर्वाधिक प्रयोग हमें मिलता है, क्योंकि निशान सेना का एक आवश्यक अंग होता था। ऊँचे उठे हुए निशानों को देखकर सेना का रणोन्माद, उत्साह बना रहता था और झुके हुए निशान सेना में निराश फैलाते थे। निशान शब्द के विषय में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि फारसी में निशान शब्द सेना के झण्डे तथा बादशाह का आज्ञापत्र के लिए प्रयुक्त होता है।[4] 'प्रवीणसागर' ग्रंथ में भी कवि ने निशान शब्द का प्रयोग झण्डे के अर्थ में ही किया है। एक जगह सेना के पड़ाव के अवसर पर होनेवाले उत्सव के वर्णन में तीन प्रकार के वाद्यों के बजने का उल्लेख किया गया है। (1) चर्म के वाद्य, जो ठोकने से बजते हैं, जैसे ढोल, पखावज आदि, (2) हवा से बजनेवाले जैसे – नफीरी, शहनाई, भेंदी आदि (3) तंत वाद्य – सितार, वीणा, सारंगी आदि।[5] युद्ध के साथ-साथ राजा की शाही सवारी के साथ भी वाद्य बजते थे, और इसका इतना प्रभाव होता था कि लोग धीरज खोकर उसे सुनने के लिए अधीर हो उठते थे।[6] राजकुमार की बारात के समय भी साथ में बड़ी संख्या में वाजंत्रीकारों का होना[7] और राज्य के पास आते ही राजमहल की ध्वजा और कलश का दिखना[8] तत्कालीन पहचान के प्रतीक का ही द्योतन करता है। बारात की अगवानी के लिए जाते समय रणतुरही, भेरी, करनाल, नगारा आदि बाजे बजने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[9] 'लखपतिजसरसिंधु' में भी नौबत, भेरी, करनाल आदि के बजने, अन्य वाद्य यंत्रों में सांझ का उल्लेख मिलता है। साथ में नकीब उच्चारने वाले चौबदारों का वर्णन भी किया गया है।[10]

अतः हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में प्रचलित सभी प्रकार के युद्ध-वाद्यों का उल्लेख हमें गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में मिल जाता है।

---

1. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर 13/19
2. अक्षयरस – संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाश सिंह – प्राप्ति अंग-47/16
   "जैसे बाझा जंग का दोउ दल सुरातन देत।"
3. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर -13/32
4. सुजानचरित्र की भूमिका – संपा. राधाकृष्ण दास, पृ. 6
5. प्रवीणसागर – संपा. गणपतिशंकर शास्त्री – लहर –14/1
6. वही– लहर– 14/20,21   7. वही– लहर 15/10
8. वही– लहर–15/11   9. वही– लहर 15/14
10. लखपतिजसरसिंधु – संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल – प्रथम तरंग-108-9-10
    नौबतिषाने.... करनालिके कंदब ।।
    सुरनाइनि... तुरही होतपार ।।
    हलके... उटत नकीब उचार ।।

(ई) अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिकों के अंग-त्राण :

मध्यकाल में अनेक शस्त्रों का प्रचलन था और सभी शस्त्रों का अपना-अपना महत्व था। मध्यकालीन कवियों ने तत्कालीन समय में प्रसिद्ध सभी प्रकार के शस्त्रों का वर्णन अपने काव्य में किया है। उत्तर मध्यकाल तक आते-आते बंदूक, पिस्तौल जैसे शस्त्रों का प्रचलन होने लगा था, जिसका वर्णन भी सोत्साह हुआ है। युद्ध के समय विविध शरीरांगों की रक्षा के लिए विविध अंग-त्राण भी पहने जाते थे, जो शस्त्रों से प्रहार के सामने रक्षण देते थे। युद्ध के समय शरीरांगो की रक्षा के लिए इसे पहनना अति आवश्यक समझा जाता था।

'प्रवीणसागर' में आये एतद्विषयक वर्णन में अनेक प्रकार के साजों से सुसज्जित घोड़ों और हाथियों का वर्णन आया है,[1] किन्तु यह साज़ किस प्रकार के थे, इसका स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता, जबकि हाथियों के वर्णन में उनके पैरों में लंगर पड़े रहते थे, जिनकी ठोकर से पहाड़ धसक पडते थे।[2] इस प्रकार का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण ही है, किन्तु एक बात स्पष्ट हो जाती है कि लंगर बाँधने से प्रहार की क्षमता बढ़ जाती थी। अन्य वर्णनों में सैनिकों के अंग-त्राण की नामावलि में सिर्फ कवच और बखतर का ही उल्लेख मिलता है।[3] जो तत्कालीन योद्धाओं के प्रमुख अंग-त्राण रहे होंगे। एक स्थान पर युद्ध वर्णन में योद्धाओं के तीक्ष्ण खंजर के प्रहार से कवच का भेदन हो जाना चित्रित किया गया है।[4] इसी प्रकार एक अन्य वर्णन में युद्ध करने जाते राजा नीतिपाल को जर्रीन पोशाक और स्वर्णजड़ित कवच धारण किये हुए बतलाया गया है,[5] जो तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। इसी प्रकार घोड़ों के वर्णन में उसके अंग पर रत्न की जड़ाऊ और पीठ पर रत्नजडित जीन और उस पर मखमल के गलीचे का वर्णन किया गया है।[6] लखपतिजससिंधु में लुहार को अन्य शस्त्रों के साथ बखतर बनाते बतलाया गया है।[7]

---

1. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर-12/2
2. वही- लहर 12/4
3. वही- लहर 13/10
4. वही- लहर 13/7
5. वही- लहर 13/19
6. वही- लहर 12/6
7. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - द्वितीय तरंग -62

शस्त्रास्त्र, युद्ध-आयुध :

तत्कालीन शासक अपनी सेना को अनेक प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित करते थे, उससे असहमत नहीं हुआ जा सकता। गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने जिन शस्त्रों का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, वह ज्यादातर परम्परागत रुप में ही है। अधिकतर एक जैसे शस्त्रों का उल्लेख ही बार-बार किया गया है, और अनेकों कवियों के बीच आयुधों के उल्लेख में समानता भी मिलती है।

आयुधों के सम्बन्ध में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि तत्कालीन राजा और अन्य शूरवीर युद्धार्थ पूर्णसज्जा के लिए, छत्तीस प्रकार के आयुधों से सुसज्जित होते थे।[1] जो प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा के अनुसार रुढ़ता का ही द्योतक है।

गुजरात के मध्यकालीन गौरवग्रंथ प्रवीणसागर में भी कवि ने छत्तीस प्रकार के आयुधों का उल्लेख किया है,[2] जिसमें तत्कालीन समय में प्रचलित अधिकांश शस्त्रों की नामावलि का उल्लेख हो गया है। इन छत्तीस प्रकार के आयुधों में जिरह का भी समावेश किया गया है, जो शस्त्र न होकर शस्त्र के प्रहार के सामने रक्षणार्थ पहनने का बखतर जैसा शस्त्र होता था। इस लम्बी सूची में से प्रमुखतया मध्यकाल में उपयोग में लिए जाने वाले शस्त्रों में तलवार[3], धनुष-बाण[4]; कटार[5], भाला[6] आदि थे , जिसका कितनी ही जगहों पर प्रवीणसागर में उल्लेख किया गया है। कितनी जगह तुफंग, पिस्तौल, बंदूक[7] के प्रयोग के उदाहरण प्राप्त होते हैं, लेकिन इन आग्नेय अस्त्रों के प्रयोग में लेने के बावजूद भी प्रायः युद्ध में हाथ में पकड़कर चलाये जाने वाले शस्त्रों का ही सहारा विशेष रुप से लिया जाता था। इन छत्तीस प्रकार के शस्त्रों में तत्कालीन समय में और वर्तमान समय में भी सौराष्ट्र में प्रचलित 'बघनखा' जैसा छोटा शस्त्र जो बहुत उपयोगी था, उसका नामोल्लेख नहीं किया गया है।

तत्कालीन समय में तलवार प्रमुख शस्त्र था, जिसके जोर पर सत्ता बनाए रखने की बात भी कही गयी है।[8] अन्य उल्लेखों में राजकुमारों के साथ-साथ सैनिकों को भी शस्त्र चलाना सिखाया जाता था।[9] अर्थात् युद्ध के लिए शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था। तदुपरांत शस्त्रागारों का निरीक्षण भी होता था।[10] युद्ध में विजय प्राप्त होने से भी बड़ी मात्रा में शस्त्र मिलते थे, जिसको विजयी सेना जब्त करती थी।[11]

8/5, 7

---

1. प्रवीणसागर -संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर 12/12
2. वही- लहर- 12/11
3. वही- लहर- 13/7
4. वही- लहर- 7/2,9/4, 12/12,13, 13/10
5. वही- लहर- 13/10
6. वही- लहर- 10/3, 13/19
7. वही- लहर- 12/8, 13/19
8. वही- लहर- 6/2

9-10 वही- लहर- 8/5,7

11. वही- लहर- 13/12

अन्य रचनाओं में से प्राप्त विवरणों के अनुसार भी तलवार, धनुष-बाण, खण्डग, कटार आदि का ही विशेष रुप से उल्लेख हुआ है।

'लखपतिजससिंधु' में प्राप्त विवरण के अनुसार तत्कालीन समय में प्रसिद्ध शस्त्रों को बनानेवाले कारीगरों का उल्लेख किया है।[1] मध्यकालीन सन्त दादू ने अप्रत्यक्ष रुप से काया के माध्यम से धनुष-बाण का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि काया ऐसी कठिन कमान है, कि जिसे कोई वीर पुरुष ही खींचकर बाण का सन्धान कर सकता है।[2] अन्य एक जगह दादू ने तलवार को ज्ञान के रुप में शब्दांकित किया है।[3]

पीछे दिये गये विवरण में जो छत्तीस प्रकार के आयुधों का उल्लेख है, उसमें से कुछ शस्त्रों का ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर उल्लेख इस प्रकार है-

✲ <u>चक्र :</u> इसका आकार प्राचीन समय में श्रीकृष्ण के शस्त्र के अनुरुप ही है। जो गोलाकार रुप का और बड़ी तेज किनार का होता था, उसके बीच में ऊँगली या डंडा रखकर चलाया जाता था। डॉ. फौजासिंह ने उसकी मार 100 से लेकर 200 गज तक बताई है, और 17वीं 18वीं शताब्दी में सिखों द्वारा चक्र के प्रयोग का उल्लेख किया है।[4]

✲ <u>बाण-तीर :</u> भारतीय युद्धविद्या में रामायण काल से धनुष-बाण का अप्रतिम स्थान, बारुद से चालित अस्त्रों के आविष्कार के पूर्व तक रहा था। बाण या तीरों में नावक के तीर विशेष प्रसिद्ध थे।

बीरान तीर नावक सु बाण, सलब चिनंग केधों कसान।[5]

यह नावक के तीर को एक नली में रखकर छोड़ा जाता था। नली तो धनुष में ही अटकी रह जाती थी, जबकि बाण पूर्ण वेग से जाकर निशाने में धँस जाता था।

✲ <u>तुफंग :</u> इरविन के मतानुसार तुफंग बन्दूक का ही अपर नाम था,[6] 'प्रवीणसागर' के सम्पादक गणपतिशंकर शास्त्री ने तुफंग को हवाई बन्दूक कहा है,[7] और भुसुंडी को भी बन्दूक बताया है।[8]

✲ <u>सांग, सेल (बरछी), भाला :</u> प्रथम दो पूर्णतः लोहे के बने होते थे। जिसका आकार भाला जैसा ही होता था और भाले बाँस की लाठी में लोहे का फल जोड़कर बनाये जाते थे।

✲ <u>बाँक :</u> शायद बनावट में बाँकपन होने के कारण ही इसका नाम बाँक पड़ा है। 'आईन-ए-अकबरी' में दिये गये चित्र में इसके फल में खांचे भी दिखाये गये हैं।

---

1. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल - द्वितीय तरंग- 62
2. दादू ग्रंथावली -संपा. परशुराम चतुर्वेदी - सूरातन को अंग- 24/33,34
3. वही - गुरुदेवजी को अंग- 1/85
4. मिलिटरी सिस्टम ऑफ़ सिख्स - डॉ. फौजासिंघ बाजवा, पृ. 234
5. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर- 13/10
6. दि आर्मी ऑफ़ दि इण्डियन मुघल्स - विलियम इरविन, पृ. 73

7-8. प्रवीणसागर -संपा.गणपतिशंकर शास्त्री - लहर- 12/11

* <u>गुप्ती</u> : बेंत के आकार का शस्त्र जिसकी मूंठ में पेच होते थे। यह बन्द दशा में लोगों को बेंत ही लगता था।
* <u>कटार</u> : दो सीधी पंत्तियों के बीच में दो आड़ी डंडी लगी रहती है। पत्तियों का ऊपरी सिरा खुला हुआ और नीचे का एक कमाचे से जुड़ा रहता है। इसी कमाचे में फल लगा रहता है।

इन शस्त्रों के अलावा मध्यकाल में तोप का प्रयोग भी होने लगा था।

* <u>तोप</u> : मध्यकाल में परम्परागत आयुधों के बदले तोप जैसे आधुनिक और महाविनाशक यंत्र ने युद्ध में अत्यन्त आवश्यक शस्त्र के रुप में स्थान ले लिया था। वैसे तो इसका आगमन बाबर के आगमन के बहुत बहुत पूर्व ही अग्निबाण, ज्वलनशील पदार्थभरे गोले तथा बारुद से लोहे के गोले फेंकने वाली मशीन के रुप में हो गया था।[1]

तोपों का निर्माण भी मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में होने लगा था। कच्छ के राजा लखपतिसिंह ने कुशल कारीगर रामसिंह मालम को नई टेकनोलोजी सीखने विदेश भेजा, वहाँ से वह कितने ही कार्य सीखकर वापस आये। उनके द्वारा निर्मित तोपें 'रामसंगी' नाम से प्रसिद्ध हुई।[2]

जो इस वैदिक जिनस की विविध बासना बोध।
लखि इस करिवो लोह को तोपन को तिन सोध।[3]

एक अन्य 'रामचंगी' नाम से भी प्रसिद्ध तोप मध्यकाल में थी, लगभग चार गज लम्बी इस बन्दूक को पेड़ों पर बाँधकर प्रयुक्त किया जाता था।[4]

यहाँ एक अन्य उल्लेख भी आवश्यक है कि ग्रंथकार ने 'प्रवीणसागर' में छत्तीस प्रकार के आयुध गिनाये हैं उसमें 'जंजाल'[5] का भी उल्लेख हुआ है, वह वस्तुतः एक प्रकार की तोप ही है। वैसे जंजाल को कितनों ने ऊँट-नाल का ही देशी नाम बताया है।किन्तु जंजाल नामक तोप से लोहे के तारों में बंधे छुरी आदि के फल छोडे जाते थे। यह सम्भव है कि जंजालों को भी ऊँट पर लादकर ले जाया जाता हो, जिससे उन्हें ऊँट-नाल भी कहा जाता हो।[6] लखपतिजससिंधु में आये उल्लेख से भी यह सिद्ध होता है कि जंजाल एक विशेष तोप थी।

बड़े कोट, किल्ला बड़े बड़ी तोप विकराल।
बड़ी रौस चिहुँ और बल जबर बड़ी जंजाल ॥[7]

(प्रवीणसागर में भी सिद्ध लोग के द्वारा गोले दागे जाने की बात कही गयी है।[8]) — 13/10,

1. एन एडवान्स्ड हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भाग-2, डॉ. आर.सी. मजुमदार एवं अन्य, पृ. 394
2. लखपतिजससिंधु - संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल- भूमिका से, पृ. xxii
3. वही-द्वितीय तरंग- 84
4. हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति - डॉ. राजपाल शर्मा, पृ.412 से उद्धृत
5. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री -लहर -12/11
6. हिन्दी वीर काव्य में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति- राजपाल शर्मा, पृ.412
7. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल- तरंग-1/103
8. प्रवीणसागर - संपा. गणपतिशंकर शास्त्री - लहर - 13/10

तो अखा ने एक अन्य तोप का उल्लेख किया है जिसे उन दिनों युद्ध में विशेष रुप से प्रयोग में लाया जाता था, जिसे 'कृपानाला' नामक तोप कहा है–

कृपानाल, अंतर से छुटी, गोला ज्ञान मिलाया।
आड़ अटक फैल सब निकल्या, जड़ से अज्ञान उड़ाया ।।[1]

(उ) युद्ध पद्धति :

शस्त्रों से सुसज्जित सेना जब कूच करती थी तो बंदीजन बिरुदावली गाते[2] दूसरी ओर छत्तीस प्रकार के महाभयानक नाद–युक्त बाजे बजते थे।[3] सैन्य के चलते दसों दिशाओं में बाजे के साथ–साथ नौबत और रणशिंगे बजने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[4] आगे ग्रंथकार युद्ध का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए लिखते हैं कि सैन्य की चढ़ाई से जो धूल उडती उससे जैसे सूर्य की कान्ति ढक गयी हो, नगारों की धमक से पहाड़ और पृथ्वी गूँजने लगते थे, ऐसा प्रतीत होता था।[5]

युद्ध करने से पूर्व युद्ध के लिए कोई विवादास्पद प्रश्न जैसे यह लड़ाई क्यों हो रही है, यह शत्रु कौन है, यह जानने हेतु दूतों को समाचार लाने हेतु प्रतिस्पर्धी से भेंट करने भेजा जाता और तब तक लड़ाई शुरु नहीं होती थी। यह हुकम पूरी सेना में फैला दिया जाता था।[6] वस्तुतः इस प्रकार के कार्य से लड़ाई को टाला जा सकता था, और बिना मतलब के युद्ध से बचना भी हो जाता था।[7] जब युद्ध की स्थिति बन जाती तो योद्धागण अपने अपने इष्ट देवता का स्मरण करते थे।[8] शत्रु सेना का सामना होते ही सामने घोड़े डालकर वीर योद्धा भयंकर गर्जना से गंभीर नाद करते थे।[9] साथ ही मारो–मारो की गर्जना के साथ सिंधु राग बजता था और अत्यन्त क्रोधित होने से योद्धाओं के मुख व आँखें मानो ऐसी प्रतीत होती थी जैसे पर्वत पर दावानल लगा हो।[10] 'प्रवीणसागर' में एक स्थान पर युद्ध के समय का विस्तार से वर्णन किया गया है। युद्ध स्थल पर मारु बाजा बजने के साथ–साथ आतिशबाजी भी की जाती थी। दोनों सेना के शूरवीर आमने–सामने शस्त्र छोडते जो ऐसा प्रतीत होता जैसे आकाश से तारे टूट रहे हों। बाजा बजने के साथ

---

1. अक्षय रस – संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह, अखाजी के पद – 13
2 से 3. प्रवीणसागर– संपा. गणपतिशंकर शास्त्री –लहर –12/12
4. वही – लहर –13/17
5. वही – लहर –13/18
6. वही – लहर –13/23 से 27
7. वही – लहर –13/28,29
8. वही – लहर –13/20
9. वही – लहर –13/5
10. वही – लहर –13/10

तीक्ष्ण खंजर का प्रहार करते, जो कवच का भेदन भी कर जाता, दूसरे योद्धागण तलवारों से युद्ध करते थे, उनकी तलवार ऐसी चमकती जैसे बिजली चमक रही हो। और क्रोध से उन्मत योद्धा ऐसे भिड़ते मानो मदमत भिड रहे हों। इस प्रकार सारा दृश्य जैसे महाभारत का युद्ध हो रहा हो, ऐसा लगता था।[1] इस वर्णन से युद्ध की भयंकरता का पता चलता है। अन्य एक उल्लेख में भी ऐसे ही भयानक युद्ध को वर्णित किया गया है[2] जिसे पढकर लगता है कि सचमुच ही हमारे सामने तत्कालीन युद्ध का परिदृश्य आ गया हो।

युद्ध में बड़ी मात्रा में जानहानि होती थी, कई सैनिक लड़ते-लड़ते मारे जाते थे[3] और मरे हुए सैनिकों का मांस-भक्षण काक, गिद्ध करते थे।[4] अतः यह पता चलता है कि मृत सैनिकों के शब को वहीं छोड़ दिया जाता होगा। कितनी बार युद्धभूमि छोड़कर सैनिक भाग भी जाते थे।[5] युद्ध में पराजित सेना के हथियार, खजाना आदि को विजयी सेना अधिकृत करती थी। जिससे विजयी सेना में उत्साह और खुशी की लहर फैल जाती थी।[6] एक बार संधि हो जाने के बाद युद्ध समाप्ति की घोषणा की जाती थी। राजा चौबेदार को बुलाकर युद्ध बंद करने की आज्ञा देते थे।[7]

लखपतिजससिंधु में एतद्विषयक कई उल्लेख मिलते हैं। कच्छ के शासक भारमल प्रथम ने मिर्जा अजीज कोका को मुजफ्फर तृतीय को सौंप दिया और उसके बदले मोरबी परगना वापस माँग लिया।[8]

भारमल्ल तिनिकें भये सिंहासन सिरताज।
दिल्लीपति आगै दुसह मारयौ जिहिं मृगराज॥
X X X X X
प्रथम मोरबी परगनो अरु अनई अवनीस।
ए बातनि दोऊ अचल दई रीझि दिल्लीस।[9]

यह राजनीतिक व्यूह रचना का भाग ही था, जहाँ मुजफ्फर तृतीय को सौंपकर अपना राज्य वापस ले लिया गया था।एक अन्य राजनीतिक कुशलता का वर्णन भी 'लखपतिजससिंधु' में मिलता है, जब जहाँगीर अहमदाबाद की यात्रा पर दूसरी बार गया था, तब राव भारमल उसे पहली बार यात्रा पर मिलने नहीं गये थे, अतः शाहजहाँ ने खिन्न होकर विक्रमाजीत को कच्छ सेना लेकर भेजा, किन्तु विक्रमाजीत के पहुँचने से

---

1. प्रवीणसागर- संपा. गणपतिशंकर शास्त्री -लहर -13/7,8
2. वही - लहर -13/10
3. वही - लहर -13/8,11
4. वही - लहर -13/10
5. वही - लहर -13/9
6. वही - लहर -13/12
7. वही - लहर -13/31
8. हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात - (वोल्युम -2) - एम.एस. कमसरियट - पृ. 26
9. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल- प्रथम तरंग-86,88

पहले भारमल दो हजार रुपये, 100 अशर्फियाँ तथा सौ कच्छी घोड़े उपहार हेतु लेकर जहाँगीर से मिला, जिससे वह प्रसन्न हुआ और दो हाथी, एक रत्न जटित कटार और चार कीमती रत्नों से जड़ी अंगुठियाँ भेंट कीं। साथ ही राव भारमल को कोरी सिक्का ढालने की अनुमति भी प्रदान की।[1]

तबतै पायौ राउंपद चतुर साहि तै चारु।

ता दिन तै, कोरीनि को दिव्य भयो दखारु ॥[2]

कभी इस प्रकार बचा जाता था। तो कभी युद्ध की परिस्थिति भी आ सकती थी। प्राचीन समय में शक्तिशाली राज्य को उनके अधीनस्थ नरेश भेंट या पेशकश चुकाते थे। इसके चुकाने में आनाकानी करने वाले नरेशों से यह राशि बलात् वसूल कर ली जाती थी। यदा-कदा दिग्विजयार्थ या किसी सैनिक-अभियान पर निकलते नरेश वार्षिक भेंट या पेशकश भी वसूल करते जाते थे।[3] कच्छ के शासक देशलजी को भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़ा था, जब गुजरात के सूबेदार सर बुलन्द खाँ ने कच्छ नरेश से मनमाना कर वसूल करना चाहा, हालाँकि जहाँगीर के समय हुए समझौते के अनुसार कच्छ से कर लिया जाना न्याय विरुद्ध था, फिर भी दस लाख महंमदी (कोरी) कर रुप में देना चाहा जिसे सूबेदार ने अपर्याप्त समझ कर ठुकरा दिया और कच्छ के रन में कूच कर गया, तब देशलजी ने आत्मसमर्पण करते समय नगर के आसपास के सभी गाँवों में आग लगवा दी, जिससे हमलावरों को अनाज और पशुओं के लिए चारा न मिल सके। इसके साथ ही राव के चतुर घुड़सवारों ने रसद पाने के सारे दरवाजे बन्द करवा दिए, परिणामस्वरुप मुगल कैंप के बहुत से ऊँट, बैल, चारा-पानी के बिना मर गए। इसी बीच दिल्ली के शासक की ओर से सर बुलन्द खाँ को गुजरात की सूबेदारी से मुक्त कर दिया गया और कच्छ एक बहुत बड़ी विभीषिका से बच गया।[4]

तात्पर्य है कि कच्छ के शासकों ने अपनी कार्यकुशलता से बहुत बार युद्ध को टाला था। कभी मनचाहा कर वसूल करने तो कभी भूमि के विस्तार के लिए युद्ध होता था। कच्छ के राव रायधन (1666-1698 ई.) ने तीन वर्ष तक युद्ध करके देदा तथा कंथकोट को अपने राज्य में मिलाकर राज्य की आय में वृद्धि की थी-

बरस तीनि लगि बीर लरि सुमिल सेन लै साथ।

करि देदा अपुने कबज कंथ कोट किय हाथ।[5]

---

1. हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात - (वोल्युम -2) - एम.एस. कमसरियट - पृ. 76
2. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल- प्रथम तरंग-87
3. स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्सियन्ट इण्डिया - प्रो. अनंत सदाशिव अल्तेकर - पृ. 228
4. हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात - (वोल्युम -2) - एम.एस. कमरसरियट - पृ. 429
5. लखपतिजससिंधु -संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल- प्रथम तरंग-96

मध्यकालीन सन्त कवियों ने भी अपनी रचनाओं में एतद्विषयक जानकारी दी है। अखा की रचनाओं में युद्ध के जो वर्णन मिलते हैं उनसे प्रतीत होता है कि अखा ने भी किसी छोटे मोटे युद्ध को देखा होगा –

जै जझमर करि जूधकूं को चड़े सो साचा संग्राम।

सों मारे मरे अखा! त्युं हरीजन कु राम ॥[1]

अन्य कई वर्णनों में युद्ध सम्बन्धी, कई निर्देश प्राप्त होते हैं। राजकीय अराजकता के चित्रण में राजा के ऊपर वजीर के हावी हो जाने से सुरक्षा नहीं बनी रहती, और डाकू लोग किल्ले को तोड़कर, दरवाजे तोड़कर शहर में लूटपाट करते और इसका शिकार अयोग्य राजा के कारण प्रजा को होना पड़ता, इसे दर्शाया गया है–

काल मेवासी नित्य सो लूटे– पाड़े कोट, दरवाजो तूटे।

राजा सदा ये रहे अबुधा। बझीर स्वतंत्र। न चाले सूधा ॥[2]

अखा ने युद्ध में सच्चे वीर को साधक की उपमा दी है, जौ ऐसा शुरवीर है जिसके पैर युद्ध भूमि में पड़ते ही कायर भाग जाते हैं, और वीर को मरने का गम नहीं होता। वह वीर अपने शीश को झुकने नहीं देता और मुख पर घाव लेता है। पीठ फिराकर भागता नहीं।[3]

दादू ने भी योद्धा को बड़ा निराला कहा है। एक बार युद्ध मैदान में गया, फिर उसके जैसा कोई नहीं। उन्होंने ऐसे वीर को सन्त–समान बताया है, जिस प्रकार सन्त ईश्वर के प्रति समर्पित होता है उसी प्रकार सूर अपने मालिक के लिए अपनी जान तक निछावर कर देता है। तब वह काल की सीमा से परे हो जाता है और ईश्वर का साक्षात्कार करता है–

दादू हम काइर कडुंवा करि रहे, सूर निराला होइ।
निकसि षड़ा मैदान में, तासमि ओर न कोइ।
XXXXXX
सूरा पूरा संतजन, साँई कौ सेवै।
दादू साहिब कारणे, सिर अपणा देवै।[4]

अखा ने भी इस प्रकार के बाह्य युद्धों को छोड़कर काम–क्रोधादि से आंतरिक युद्ध लड़कर जो विजय प्राप्त करता है, उसकी गति अजब होती है, वह मन को काबू में कर स्थिर राज्य को प्राप्त कर सकता है–

परस्या के वचन कूं पावनहार पतिआये।

जे रण जंग में राता रहे अखा सो अजब गत्य पाये ॥

XXXXX

---

1. अक्षयरस –संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह – तपास अंग– 64/8
2. वही – भजन–6
3. वही – सुरमा – 23/1,2,5
4. दादूदयाल ग्रंथावली – संपा. परशुराम चतुर्वेदी – सूरातन को अंग – 24/4,19

संत सम सेरु नां कछु करे शब्द को चोट।
अखा टीका तो ताह दे खटकया तो खाई खोट ।।[1]

सैन्य एवम् युद्ध विषयक अन्य उल्लेखों में सेना जब सैर करने या युद्ध के लिए प्रस्थान करती तब राजा की अंगत सेना चतुरंगिणी सेना या अन्य दलों से बाई ओर एक टोली या पंक्ति बनाकर चलती थी[2] इस प्रकार के निर्देश प्रवीणसागर ग्रंथ में प्राप्त हुए हैं।

सैन्य दैनिक कितने कोस चलता था, इसका उल्लेख नहीं हुआ है। लेकिन प्रवीणसागर ग्रंथ में कवि ने सेना को आठ कोस के अंतर काटने के बाद[3], विश्राम करते वर्णित किया है।[4] तो अन्य एक वर्णन में बारह कोश का अंतर काटने के बाद पडाव डालने का उल्लेख किया है।[5] रात्रि के पड़ाव के समय मनोरंजन होता था। जिसमें नाटक, संगीत की महफिल होती थी।[6] अतः यह कहा जा सकता है कि मनोरंजन करने वाले भी शायद सेना के साथ रहते होंगे। एक स्थान पर ग्रंथकार ने सेना के साथ व्यावसायिक वर्ग अपनी दुकानों सहित रहने का वर्णन किया है।[7] रात्रि के पडाव के बाद प्रातःकाल सूर्य उदय होते ही सेना को कूच करने के लिए नगाडे बजाये जाते थे।[8] सेना जब अपने नगर के पास आती तो राजा की सवारी सेना के साथ आ रही है, इसकी खबर देने के लिए दूत को भेजा जाता था, और महाराज के शुभागमन की सूचना पाते ही नगरवासी हर्षित होकर खुशियाँ मनाते थे।[9]

मुद्रा : कच्छ के जाड़ेजा वंशजों के राज्यकाल के समय में कोरी के सिक्को का चलन था। यह तथ्य ऐतिहासिक और मध्यकालीन साहित्य में देखने को मिलता है। मुगल बादशाह जहाँगीर ने कच्छ के

---

1. अक्षयरस – संपा. डॉ. कुँअरचन्द्र प्रकाशसिंह – अथ ज्ञान को अंग– 73/5, सुरमा– 23/7
2. प्रवीणसागर– संपा. गणपतिशंकर शास्त्री –लहर –13/2,3
3. वही – लहर – 12/16
4. वही – लहर –14/4
5. वही – लहर –12/13
6. वही – लहर – 14/1
7. वही – लहर – 12/13
8. वही – लहर – 13/1, 14/3
9. वही – लहर – 14/4,5

शासक राव भारमल को कोरी सिक्का ढालने की अनुमति प्रदान की थी।[1] जिसका चित्रण आचार्य कुँअर कुशल ने लखपति जस सिंधु में किया है–

भारमल्ल नितिकें भय सिंहासन सरताज।

दिल्लीपति आगे दुसह मारयौं जिहिं मृगराज।

तबतै पायो राउपद चतुर साहि तै चारु।

ता दिन ते कोरीनि को दिव्य भयो दखारु।[2]

देसाई शंभुप्रसाद जी के सौराष्ट्र का इतिहास नामक गुजराती भाषा के ग्रंथ में भी सौराष्ट्र में कोरी और महमूदी का चलन मुगलकाल में प्रचलित था[3] ऐसा कहा गया है। लम्बे समय तक कोरी के सिक्के पर मुगल शहेनशाह के नाम या खिताब का अंकन होता था, और साथ में कच्छ राज्य के कुछ निशानों जैसे कि खड़ग, त्रिशूल, ध्वज, छत्र या पुष्प और राजा अथवा राज्य के नाम से एक–दो अक्षरों को अंकित करते थे। यह प्रथा राजनैतिक दृष्टि से स्थानिक राज्य और मुगलों के बीच के अच्छे सम्बन्ध रखने के लिए हितावह थी।"[4]

उपर्युक्त वर्णनों में आचार्य कुँअर कुशल ने लखपतिजससिंधु में राव भारमलजी के कोरी के सिक्के की बात कही है उसका समर्थन इतिहास दर्शन से भी हो जाता है।[5]

* न्याय–दंड–व्यवस्था :

जहाँ तक न्याय एवम् दंड व्यवस्था का प्रश्न है वहाँ गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में एतद्विषयक उल्लेख दृष्टिगत नहीं होते हैं। किन्तु 'राज्य के संचालन' शीर्षक के अन्तर्गत सहायक कर्मचारियों में कोतवाल किस प्रकार न्याय करता था, और कैसा न्याय मिलता था, उसका उल्लेख किया गया है। लेनिक दंड किस प्रकार दिया जाता था, किस अपराध के लिए किस प्रकार की सजा दी जाती थी, यह जानकारी प्राप्त नहीं होती।

---

1. हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात – वोल्युम –2, एम. एस. कमसरियट, पृ.76
2. लखपतिजससिंधु – संपा. डॉ. दयाशंकर शुकल, प्रथम तरंग – 86,87
3. सौराष्ट्र नो इतिहास – पृ. 561
4. मुघलकालीन गुजरातनो इतिहास – डॉ. नवीनचंद्र आचार्य– पृ. 130
5. वही – पृ.130-31 से उद्धृत

> "राव भारमलजीना कोरीना सिक्का उपर, हि. 988 तथा त्रिशूल, अर्धचंद्र, कटार वगेरेनुं निशान हतुं, चाँदीनी कोरीनुं लगभग 0। तोला वजन थतुं। राव देशलजी ना कोरीना सिक्का उपर मुघल शहेनशाहना नाम नीचे 'राजा रावश्री देशलजी' ओम लखेलुं जोवा मले छे. आवा सिक्का कच्छमां घणे ठेकाणे जोवा मले छे. कच्छना संग्रहालयमां पण ते राखवामां आवेल छे. "

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय में गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उपलब्ध विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भारत देश के सदृश गुजरात प्रदेश की राजनीतिक स्थिति भी आंतरिक अन्तर्विरोधों से ओतप्रोत थी। सर्वदेशीय स्थितियों ने गुजरात प्रदेश को भी अछूता नहीं रखा था। सम्पूर्ण प्रदेश छोटी-छोटी रियासतों में बँटा था। शासकों में विलासप्रियता, प्रदर्शन और छोटे-मोटे आक्रमणों द्वारा आसपास के राज्यों को प्रभावित करने की प्रवृत्ति यहाँ भी बनी थी, फिर भी यहाँ के अधिकांश राजाओं का अपनी प्रजा के प्रति हितकर दृष्टिकोण था, जो सद्भाव पर आधृत था। राजा अपनी प्रजा के दुःख-दर्द से पूर्णतः परिचित थे और उनके जानमाल की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। अपनी प्रजा के कार्यों के प्रति सजग होते हुए भी कुछ राजा अपनी प्रजा की सम्पत्ति को भोग-विलास में उड़ा देते थे, और वैभव-विलास में डूबे रहते थे, जिससे राज्य में अशांति व्याप्त हो जाती थी जिससे वे कभी-कभी अनभिज्ञ रहते और उनके प्रधान, वजीर जैसे कर्मचारी उसका लाभ उठाते थे। गुजरात की प्रजा स्वभावतः काफी शांतिप्रिय और व्यवस्थित जीवन-पद्धति में विश्वास करनेवाली रही है। इसलिए विविध प्रकार के राजकीय निर्णयों और अशांतपूर्ण वातावरण के समय सामान्य प्रजाजन को इससे कोई लेनादेना नहीं होता था। अर्थात् जिस नगर में अयोग्य राजा हो, वहाँ की प्रजा भी अपने ढंग से चलती थी। उनको राजा के होने न होने का कोई हर्ष शोक नहीं होता था। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार प्रजाजन इस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति अपना हर्ष अथवा शोक व्यक्त करके अपनी राजनीतिक चेतना का प्रकटन करते थे। वस्तुतः अधिकतर राजाओं के प्रजा के साथ सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे हैं। कच्छ को ही उदाहरण के रुप में लें तो भारत देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद राजाशाही समाप्त हो जाने पर भी सन 1962 में चुनाव के समय में कच्छ राज्य के प्रति प्रजा की हार्दिक अनुकम्पा और राजा-प्रजा के निखालस भावों के दर्शन हमें देखने को मिलते हैं। जिसे 'कारा डुंगर कच्छजा' के लेखक ने विस्तार से समझाया है।[1]

मध्यकाल में राज्य के संचालन के लिए राजसभा का आयोजन होता था, जो सप्ताह में कुछ निर्धारित दिनों को आयोजित की जाती थी, जिसमें सभी राज्य कर्मचारी सम्मिलित होते थे।राजा पहले लोगों को सुनता था। सभा के अंत में संगीत, नृत्य इत्यादि होता था, जो आधी रात तक चलता था। अन्य दिनों में राजा अपनी सेना, शस्त्र जैसे कामचलाउ व्यवस्था और शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर ध्यान देता था।

उत्तराधिकार के नियम भी सम्पूर्ण भारत में लगभग एक जैसे रहे हैं। एक शासक के बाद उसका बडा पुत्र ही राजगद्दी को प्राप्त करता था। कहीं पर उसका पालन होता था तो कहीं पर यह नियम टूटता हुआ

---

1. कारा डुंगर कच्छजा - अनुवाद - वसंतराय पट्टणी, विशेष दृष्टव्य के लिए देखें - पृ.14,15

भी मिलता है। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि राजा ने जीते जी अपने बड़े पुत्र को यह अधिकार सौंप दिया था। शायद इसका यही कारण हो सकता है कि बाद में उसके न रहते हुए उत्तराधिकार को लेकर झगड़े न हों।

प्रधान या प्रधानमंत्री जो राजा के सबसे निकट का व्यक्ति कहलाता था उसके अधिकार क्षेत्र में अनेक कार्य रहते थे। सभी प्रकार के महत्वपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने की जवाबदारी प्रधान को ही निभानी पड़ती थी। वे राजा के परामर्शदाता भी थे, किन्तु उनके परामर्शों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करना भी नरेशों की स्वेच्छा पर निर्भर रहता था। राज्य–कोष की अध्यक्षता उनका मुख्य कार्य था। मध्यकालीन रचनाओं के अनुसार इस पद पर श्रीमंत व्यक्तियों को ही बिठाया जाता था, क्योंकि जब राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती तो प्रधान की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती और उसे पदमुक्त कर दिया जाता था। संभवतः इस प्रकार की व्यवस्था गुजरात में विशेष रुप से दृष्टिगत होती है। ऐसा उल्लेख अन्यत्र देखने में नहीं आता। वैसे राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने का यह कोई आदर्श मार्ग नहीं था।

जो स्थान हिन्दू शासन में प्रधान का था वही मुगल दरबार में वजीर या दिवान का होता था। यह भी प्रधान की तरह अमीर घरानों से सम्बन्धित होना चाहिये यह एक शर्त होती थी। एक प्रकार से राजा या बादशाह के पास के कोई भी काम की कड़ी यह प्रधान या वजीर होते थे। एक प्रकार से राज्य सम्बन्धी समस्त कार्यों का भार राजा के बाद उन पर ही रहता था और राजा के अयोग्य, अबुध होने पर राज्य संचालन में यह लोग अपनी मनमानी करते या कभी वही लोग स्वतंत्र रुप से राज्य संचालन करते थे। मध्यकालीन इतिहास इसका साक्षी है कि तत्कालीन शासकों के विरुद्ध षडयंत्र करके प्रधानों, वजीरों व्दारा सत्ता को प्राप्त किया गया हो।

अन्य राज्य कर्मचारियों में राजा के निकट के सम्बन्धी जो भायात कहलाते थे, उनको भी राजा व्दारा परामर्श के लिए आमंत्रित किया जाता था। जिनको सामंत कहा गया है। अन्य प्रशासनिक अधिकारियों में काजी न्याय देने का काम करता था , कोतवाल कानून की स्थिति बनाये रखने का काम तो गुप्तचर राजा को राज्य की समस्त सूचनायें पहुँचाने का काम करते थे। इन गुप्तचरों की वाकियानवीस, खुफियानवीसों जैसी श्रेणियाँ भी बनाई गयी थीं। कभी वाकियानवीस प्रांतीय अधिकारियों से मिल जाते और सच्ची खबर राजा तक नहीं पहुँचती थी इसलिए उनके ऊपर खुफियानवीसों की नियुक्ति होती थी। तत्कालीन न्याय भी कुछ खास लोगों का पक्ष लेता था। और कानून की स्थिति भी बिगड़ी हुई प्रतीत होती है। न्याय सत्य

के बदल सम्पत्ति के निकट हुआ करता था। खास कर मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में अशांतिपूर्ण वातावरण छाया रहा। और आंतरिक झगड़े भी व्यापक परिमाण में देखने को मिलते हैं, जिससे पूरी संचालन व्यवस्था ही नष्टप्राय प्रतीत होती है। लोगों के नैतिक मूल्यों में भी गिरावट देखी जा सकती है, जिसमें सामान्य जनों की सबसे विषम परिस्थिति देखने को मिलती है।

सैन्य व्यवस्था और उसके विविध अंगों के बारे में चतुरंगिणी सेना विशेषण प्रयुक्त हुआ है। अर्थात् सेना के मुख्य चार अंग थे। गज सेना का विशेष महत्व था और उनकी पर्याप्त संख्या हुआ करती थी। गजों को पूर्ण रुप से सजाया जाता था। जिस पर राजा तथा अन्य सरदार भी सवारी करते थे। जिसका विविध प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता था। अश्वसेना की संख्या का अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख किया गया है, उनकी संख्या बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बतायी गयी है। अनेक प्रकार के ख्यातनाम घोड़ों को सेना में शामिल किया जाता था। कच्छी घोड़े तो पूरे भारतभर में प्रसिद्ध थे। रथ-सेना में सेना में सुशोभित रथों का भी उपयोग होता जिसमें उमरावगण बैठते थे। ज्यादातर स्त्रियों के उपयोग का यह साधन था। रथों में अश्वों के साथ-साथ बैलों को भी जोता जाता था। परम्परागत रथसेना का स्थान, उन रथ या यानों में ले जाई जाने वाली तोपों ने ले लिया था। रथों को युद्ध-सामग्री के वहन तथा संचार-व्यवस्था के लिए प्रयुक्त किया जाता था, उसमें बैठकर युद्ध करने का प्रचलन नहीं था। पैदल सैनिकों की संख्या सबसे अधिक रहती थी। युद्ध में सबसे बड़ी जानहानि इन्हीं लोगों को उठानी पड़ती थी। कभी-कभी यह सैनिक युद्धभूमि छोड़कर भाग भी निकलते थे। सैन्य के साथ एक सांडनी सवार भी रहता था जो संदेश को लाने-ले जाने का कार्य करता था। वर्तमान समय में जिस प्रकार सेवानिवृत्त सैनिकों को अनेक प्रकार के लाभ मिलते हैं, इसी प्रकार तत्कालीन समय में भी राज्य की ओर से सेवानिवृत्त सैनिकों के लिए उचित व्यवस्था कर नये सैनिकों की भरती की जाती थी।

छोटे-छोटे राज्यों की अलग पहचान के लिए सेनाओं के साथ वाद्य, पताकाओं, निशानों आदि का खूब महत्व होता था। सेना के साथ राजकाज के किसी भी काम के लिए प्रस्थान करते समय नगाड़े, दुंदुभी का बजना आवश्यक होता था। सेना के साथ इसका अटूट सम्बन्ध था। मध्यकालीन गुजरात के काव्यों में छत्तीस प्रकार के रणवाद्यों के बजने के उल्लेख मिलते हैं। इनका कई उद्देश्यों से प्रयोग किया जाता था। सैनिकों को युद्ध-सज्जा का संदेश देने, प्रस्थान करने, विजय की जानकारी देने, युद्ध समाप्ति की घोषणा करने, संधि की बात करने, नगर प्रवेश और अन्य कई राज्य उत्सवों के प्रसंग में इन्हें बजाया जाता था। सेनाओं के साथ विविध रंग की पताकायें भी रहती थी।जो इनकी विशिष्ट पहचान को बताती

थी। इन के अलावा युद्ध के समय विविध प्रकार के रागों को भी गाया जाता था जो सैनिकों में रणोन्माद उत्पन्न करने में सहायक होते थे। सिंधु-राग का विशेष प्रचलन था।

अस्त्र-शस्त्रों तथा अंग-त्राण का जहाँ तक सवाल है, तोप जैसे विनाशक शस्त्रों का प्रयोग भी मध्यकाल में मुसलमान शासकों के प्रभाव के कारण हो गया था। उत्तर-मध्यकाल तक आते आते बड़ी-बड़ी बंदूकें और पिस्तौलों का भी प्रयोग होने लगा था। मध्यकालीन कवियों ने छत्तीस प्रकार के शस्त्रों की नामावलि भी दी है, जो तत्कालीन समय में प्रयुक्त होते थे किन्तु उसमें तत्कालीन समय में सौराष्ट्र में प्रचलित और विशेष रुप से प्रयुक्त बघनखा जैसे शस्त्र का उल्लेख नहीं हुआ है। तत्कालीन समय के प्रमुख शस्त्रों में तलवार, धनुष-बाण, कटार आदि का विशेष प्रचलन या आग्नेय शस्त्रों के बावजूद हाथ से चलाये जानेवाले शस्त्रों का विशेष प्रचलन था। विविध प्रकार की तोपों के नाम भी मिलते हैं। उसका निर्माण भी स्थानीय रुप से होता था, उसकी भी पुष्टि होती है। युद्ध के समय पहने जानेवाले विविध अंग-त्राणों में कवच और बख्तर का विशेष उल्लेख है। एकाध जगह पर रत्नजड़ित कवच और बखतर का भी उल्लेख हुआ है। यह युद्ध के समय शरीर के अंगों की रक्षा हेतु पहने जाते थे। लेकिन अतिशय प्रहार से कट जाने के उल्लेख भी मिलते हैं।

सेना जब युद्ध के लिए निकलती तो बंदीजन बिरुदावली गाते और छत्तीस प्रकार के वाद्य बजाते थे। युद्ध के पहले युद्ध का कारण जाना जाता था। और उसका कोई हल नहीं निकलता तो बाद में युद्ध होता था। युद्ध होते ही दोनों दलों के सैनिक अपने अपने इष्ट देवता का स्मरण कर एक-दूसरे पर प्रहार करते थे। मारु बाजा बजता था और दोनों दल आमने-सामने शस्त्र छोड़ते थे। युद्ध में बड़ी भारी जानहानि होती थी। विजयोपरांत पराजित सेना का सबकुछ जब्त कर लिया जाता था। एक बार संधि हो जाने के बाद युद्ध समाप्ति की घोषणा कर दी जाती थी। कितनी बार राजकीय व्यूह और भेंट सौगात देकर युद्ध को टाला जाता था। शूरवीर सैनिकों का बोलबाला था। रात्रि के समय सैनिक पड़ावों में मनोरंजन होता था। उनके साथ उनकी आवश्यकताओं की सभी चीजें रहती थीं।

राज्यों में मुद्रा के चलन के संबंध में कच्छ में कोरी के सिक्के के चलन का विशेष उल्लेख मिलता है। जहाँगीर की अनुमति से राव भारमल ने कोरी के सिक्के ढलवाये थे। सिक्के पर मुगल शासक की मोहर के साथ साथ कच्छ के शासकों की भी एकाद मोहर रहती थी।

न्याय-दंड व्यवस्था के बारे में कोई विशेष जानकारी हमें प्राप्त नहीं होती है।